श्रीस्थल-देवी-दर्शनम्

पं० हरिलालः शर्मा ज्योतिषी

हिन्दू शिक्षा समिति, किश्तवाड़

श्रीस्थल-देवी-दर्शनम्

लेखकोऽस्य

पं० हरिलालः शर्मा ज्योतिषी

जम्मू कश्मीर राज्यान्तर्गते किश्तवाड़ाऽभिधेये नगरे वास्तव्यः

प्रकाशक

हिन्दू शिक्षा समिति, किश्तवाड़

मिलने का पता :

(१) भारती विद्या मन्दिर, उच्च विद्यालय किश्तवाड़ (जम्मू-कश्मीर)

(२) बालकृष्ण् पुस्तक विक्रेता, किश्तवाड़।

● प्रथम संस्करण— १९७९-८० ई०

● द्वितीय संस्करण— २००० ई०

मूल्य : १०० रुपये

मुद्रक :

सियाराम प्रिन्टर्स

१५६२, मेन बाजार पहाड़गंज

नई दिल्ली-११००५५

दूरभाष : ७७७३५०४, ३५४४५०४

शुभं भूयात्।

सज्जनेषु सुशीलेषु सदा देव्याः कृपा भवेत्।

।। प्रथमं स्मृति पुष्पम् ।।

आदरणीयांया: श्रीमत्याः प्रेमदेव्याः पुण्य स्मृताविदं प्रथमं पुष्पम्।

।। द्वितीय संस्करण ।।

समर्पणम्

जगदम्ब! शिवे!!

विद्वान लेखक :- स्वर्गीय श्री हरिलाल जी ज्योतिषाचार्य।

कान्तं नितान्त सुखदं परमं पवित्रं स्वान्ते निधाय वरदे तव पाद युग्मम्।
तस्मिन् पदाम्बुजयुगे प्रमुदे तवैव शर्वाणिः पुस्तक मिदन्तु समर्पयामि।।

।। ओ३म् नमश्चण्डिकायै ।।

श्रीमती प्रेम देवी (सहधर्मिणि लाला अमरचंद महाजन, किश्तवाड़)
ग्रंथमाला प्रथम पुष्प ''श्रीस्थल देवी दर्शनम्''
का यह द्वितीय संस्करण किश्तवाड़ के
ख्यात-नाम समाज-सेवी
श्री त्रिलोक नाथ जी गुप्ता की
पावन स्मृत्ति में सादर
समर्पित।

श्री त्रिलोक नाथ जी गुप्ता, जिनकी पावन स्मृत्ति में इस ग्रंथ को छपवाने हेतु उनके कनिष्ठ भ्राता श्री कृष्ण लाल जी गुप्ता एवं सुपुत्र श्री रवि कुमार जी गुप्ता ने वित्तीय सहायता प्रदान की।

॥ श्रीस्थल माता, देवी अठाराह भुजा ॥

विषय-सूची

समग्रसाध्यसाधिकाम्
चण्डिकांदयापरां।

लेखक परिचय

इस पुस्तक के लेखक, पूज्य हरिलाल जी किशतवाड नगर के रहने वाले थे। पण्डित जी का जन्म एक धर्मनिष्ठ ब्राह्मणकुल में विक्रम सम्वत् १९६७ में हुआ था। इन्होंने कश्मीर जाकर, वहां के विद्वानों के सान्निध्य में रह कर व्याकरण, संस्कृत भाषा तथा ज्योतिष शास्त्र का अध्ययन किया।

स्वर्गीय पण्डित जी एक बहुमुखी विद्वान थे। उनके पास ज्ञान का भण्डार था। गीता, महाभारत आदि ग्रंथों पर उनका विद्वत्तापूर्ण और युक्ति-युक्त प्रवचन महीनों चलता था। हिन्दी, उर्दू तथा संस्कृत भाषा पर आप अच्छा अधिकार रखते थे। आप एक कुशल लेखक थे। आपने कई छोटे-छोटे ट्रैक्ट लिखे हैं। प्रस्तुत ग्रंथ तो उनकी विद्वता, भाषा पर अधिकार, अनुसन्धान की क्षमता, इतिहास का ज्ञान और उनके राष्ट्रीय विचारों का साक्षी है। आप एक विचारक और तार्किक भी थे। आप जटिल समस्याओं और प्रश्नों का तर्कयुक्त समाधान करने की क्षमता भी रखते थे। विवाह संस्कार से सम्बन्धित आपकी एक हस्तलिखित पुस्तक भी है। आप एक प्रभावशाली और निडर वक्ता थे। इन्हीं गुणों से प्रभावित होकर महाराजा कश्मीर ने आपको पुस्तकों का एक भण्डार पारितोषिक में दिया था।

पूज्य पण्डितजी का जीवन समाज सेवा का रहा है। आप आर्यसमाज के एक अग्रगण्य कार्यकर्त्ता रहे हैं। समाज सुधार के प्रयत्नों में आपको कई कठिनाईयों का सामना करना पड़ा है। विश्व हिन्दू परिषद् के भी आप अध्यक्ष रहे हैं। आप राजनीति में भी रूचि लेते थे। प्रजा परिषद् और पश्चात् भारतीय जनसंघ में रह कर आपने कार्य किया है। प्रजा परिषद् के विख्यात आन्दोलन में आपने जेल-यात्रा की थी।

पूज्य पण्डित जी हिन्दू शिक्षा समिति, किश्तवाड़ के प्रथम प्रधान थे। आपके ही प्रेरणादायी नेतृत्व में समिति ने भारती विद्या मंदिर, किश्तवाड़ नाम से विद्यालय आरम्भ किया है। अब यह विद्यालय हाई स्कूल स्तर तक पहुँच चुका है।

स्वर्गीय पण्डित जी एक उच्चकोटि के ज्योतिषी थे। आप पुरोहिताई भी करते थे। ज्योतिष्-कार्य और पुरोहिताई के द्वारा प्राप्त सात्विक कमाई ही आपके परिवार के पालन-पोषण का आधार थी।

प्रस्तुत पुस्तक की पाण्डुलिपि पूज्य पण्डित जी को दो बार लिखनी पड़ी थी। प्रथम बार लिखी गई पाण्डुलिपि एमरजेन्सी के काले दिनों में भारत मुद्रणालय, दिल्ली में राक्षसी वृत्ति के शासकों के कोप का भाजन बन गई। पर पण्डित जी ने अपार धैर्य का परिचय दिया। उन्होंने सम्पूर्ण पाण्डुलिपि दोबारा तैयार की और छपवाने के लिए पुनः दिल्ली भेज दी। इस पुस्तक के प्रूफ दिल्ली से आते थे जिन्हें पण्डित जी देखकर वापस दिल्ली भिजवा देते थे। पुस्तक का अन्तिम प्रूफ दिसम्बर १९७९ को उनके पास पहुँचा। उस प्रूफ को देख चुकने के कुछ ही घण्टों के पश्चात् वे हम से सदैव के लिए विदा हो गए।

इस पुस्तक में देवी के इतिहास के साथ-साथ किश्तवाड़ के शौर्यपूर्ण इतिहास की भी कुछ झलकियाँ मिलती हैं। पण्डित जी की ओजस्वी लेखनी से लिखित यह पुस्तक हमारे लिए प्रेरणा का स्रोत है। यह अब हमारी एक अमूल्य धरोहर है।

इस ग्रंथ को पढ़ कर हम प्रेरणा लें और अपने पूर्वजों के गुणों, मूल्यों और उनके आदर्शों को अपने जीवन में समाविष्ट करने का प्रयत्न करें। यही पूज्य पण्डित जी के प्रति सच्चे स्नेह की अभिव्यक्ति होगी।

॥ ओ३म् शम् ॥

– प्रकाशक

मार्गशीर्ष ३०, २०३६
१५ दिसम्बर, १९७९

प्रकाशक का निवेदन

श्रीस्थले निवासिनीं
महेश्वरीं नमाम्यहम्।

धर्मपरायण तथादेवी-भक्त जनता की यह उत्कृष्ट इच्छा रही है कि— "अष्टादश भुजा, श्रीस्थल देवी" के सम्बन्ध में कोई ऐतिहासिक ग्रंथ हो, जिसे पढ़कर सुख प्राप्त हो और प्रेरणा भी मिल सके। वैसे तो महामाया जगदम्बा का इतिहास दुर्गा सप्तशती और अन्य कई ग्रंथों में पढ़ने को मिलता है, परन्तु श्रीस्थल देवी का इतिहास किश्तवाड़ के निवासियों से सम्बन्ध रखने के कारण कुछ अन्य विशेषताएँ और गरिमा रखता है। आपकी चिर-पिपासा को तृप्त करने हेतु इस ग्रंथ को छपवाकर और आपके समक्ष प्रस्तुत कर हमें अतीव हर्ष की अनुभूति हो रही है।

प्रस्तुत ग्रंथ में भगवती का किश्तवाड़ की धरती पर अवतरित होने का पुनीत इतिहास है। इसके साथ ही हमारे पूर्वजों का इतिहास भी जुड़ा है। इस ग्रंथ को पढ़ने से हमें अपने पूर्वजों के शौर्यपूर्ण, त्यागमय, धर्मपरयाण और राष्ट्र-प्रेम से परिपूर्ण जीवन के सम्बन्धमें परिचय प्राप्त होता है। इस इतिहास को पढ़कर हम इस बात की तुलनात्मक विवेचना भी कर सकंते हैं कि हमारे पूर्वज क्या थे और आज हम क्या है?

हिमालय की यह सुदूर कन्दरा धर्मप्रचार और तप-तपस्या का केन्द्र रही है। समय-समय पर ऋषि-मुनियों ने अपनी तपोसाधना से इस धरती को पवित्र और तेजयुक्त किया है। हमारे पराक्रमी, धर्मनिष्ठ और देश-भक्त पूर्वजों ने एक ऐसे इतिहास का निर्माण किया है, जिसकी तुलना अपने इस विशाल देश में यत्र-तत्र घटित ऐतिहासिक घटनाओं के साथ सहज ही हो

सकती है। वास्तव में हमारे समाज का ढाई-तीन हज़ार वर्ष पुराना सतत संघर्ष का जो इतिहास रहा है, उसी का एक अंश है किशतवाड़ का यह गरिमामय इतिहास भी।

देवासुर संग्राम कालांतर से होते आए हैं। पिछले ढाई-तीन हज़ार वर्ष का इतिहास भी इसी संग्राम का एकक है। यवन और परकीय निरंतर इस देश पर आक्रमण कर यहां लूटपाट, अनाचार, रक्तपात और अमानुषिक कृत्य करते रहे। इतिहास बताता है कि हमने प्रत्येक विषम परिस्थिति में संघर्ष किया है। पर्वतों से घिरी हुई इस किशतवाड़ की धरती पर रहने वाले हम लोग आज चाहे कुछ भी हैं, परन्तु इस संघर्ष में रत रहने का सौभाग्य हमें भी प्राप्त हुआ है। इस भूमि के रणस्थल हल्दीघाटी, चमकोर और सिंहगढ़ के समान पवित्र हैं। यहां के रणबांकुरे वीरों ने अपनी स्वतंत्रता और गौरव-गरिमा को बनाए रखने के लिए जहांगीर, औरंगज़ेब आदि अत्याचारी और महत्वाकांक्षी यवन शासकों से लोहा लिया है। कहाँ सिंहगढ़, कहां मेवाड़ और कहां किशतवाड़; परन्तु अपने-अपने समय पर बजने वाले संघर्ष के पाञ्चजन्य का क्रान्ति-नाद समान स्वर का रहा है। जहां हम एक ओर से दुर्गादास राठौर, राज सिंह, छत्रसाल, गुरू गोविंद सिंह, शिवाजी अथवा महाराणा प्रताप जैसे वीर शिरोमणियों का नाम बड़े गर्व से लेते हैं, वहां हमको उतना ही गर्व वीर जग्गू शान, भाता शान, नारायण परिहरा, भूपसिंह और वीर लक्षपत आदि के इतिहास को पढ़ कर होता है। जितना गर्व हमें वीरत्व की मूर्ति महारानी दुर्गावती पर है, उतना ही गर्व वीरांगना कोकिला देवी पर भी है। घोड़ खिंड की पावन घाटी-जहां बाजी प्रभु देश पाण्डे ने सिद्धी मसूद और सिद्धी जौहर को सेना समेत पछाड़ा था; राजस्थान की हल्दी घाटी-जहां महाराणा प्रताप और सुभट्ट राजपूतों ने टिड्डी दल मुगल सेना को धरा की धूल चटाई थी; इन घाटियों का इतिहास कितना गरिमामय और शौर्यपूर्ण है। इसी प्रकार से क्षात्रोक की घाटी का इतिहास भी कुछ कम गरिमामय नहीं, जहां का "मुगलमज़ार" अब भी शत्रुओं की पराजय और हमारी अजेय शक्ति का इतिहास दोहरा रहा है।

दृढ़पथ की घाटी भी कोई कम पावन नहीं, जहां पर वीर बाला कोकिला "मॉंजी" ने रणचण्डी का रूप धारण कर मिर्जा हैदर की आततायी सेना के रक्त से शातोदरी नदी के निर्मल-शीतल नीर को लाल कर दिया था। एक ओर से जहां समर्थ गुरू रामदास ने वन-कन्दराओं का वास छोड़ जन-जन के पास पहुँच कर हिन्दुवी स्वराज्य का अलख जगाया था, वहां दूसरी ओर से योगवेत्ता महात्मा तुलसी गिरीने "कुगम-भृगु" उपत्यका का त्याग कर घर-घर में फेरी लगाकर क्रान्ति का नाद बजाया और किश्तवाड़ निवासियों को स्वतंत्रता दिलवाई। कितनी समता है इतिहास की इन घटनाओं में। हमारे पराक्रमी पूर्वज शक्ति के अनन्य उपासक रहे हैं। शिवाजी महाराज की इष्ट देवी तुलजा भवानी थी। महाराणा प्रताप के इष्ट देवता भगवान एकलिंग थे। वीरांगना दुर्गावती की इष्टदेवी भगवती चण्डिका थी, और इसी प्रकार से महाराज कीर्तिसिंह, महात्मा तुलसीगिरी और वीरबाला कोकिला देवी की इष्ट देवी अष्टादश भुजा श्रीस्थल वासिनी थी, जिसकी वरद् कृपा और प्रेरणा से इस भूखण्ड की स्वतंत्रता, यहां का स्वाभिमान और स्वत्व जीवित रहा। इतिहास साक्षी है कि घोर अज्ञानी, जड़मति, वितण्डावादी और अन्यायी विदेशी आक्रमणकारियों ने हमारे अमूल्य सांस्कृतिक और ऐतिहासिक चिह्नों को नष्ट-भ्रष्ट करने का कुप्रयास किया है। जिस प्रकार से सोमनाथ का मन्दिर कई बार विधर्मियों के कोप का भाजन बना, इसी प्रकार से श्रीस्थल देवी का यह मंदिर परकीयों के कई आघातों को सहकर, कई बार ध्वसित होकर और कई बार फिर उठकर, वर्तमान स्थिति में आज हमारे सम्मुख विराजमान हैं। हमारी गौरवमयी और संघर्षपूर्ण गाथा इस मंदिर के कण-कण में निहित है।

अपनी इष्टदेवी और अपने महान् पूर्वजों के इस गरिमामय इतिहास को पढ़ कर हमारी छाती अवश्य ही गर्व से फूलेगी, परन्तु हम तनिक विचार करें कि हमारे पूर्वज क्या थे और आज हम क्या हैं? हमारे तपोनिष्ठ और योगाभ्यासी पूर्वजों ने सर्वशक्तिमान, सच्चिदानंद स्वरूप ईश्वर के दर्शन शक्ति के रूप में किए थे। शक्ति की उपासना तो हमारी जीवन

मीमांसा है। वास्तव में हम तो शक्ति के पुत्र हैं। परन्तु अत्यन्त खेदपूर्ण विषय यह है कि आज हमारे ही अन्दर कायरता, चाटुकारिता, नैतिक और चारित्र्य दुर्बलताएं उत्पन्न हो गई हैं। हमें व्यक्गित स्वार्थों ने घेर लिया है। आपसी ईर्ष्या, द्वेष तथा अनैतिक कृत्यों के भयंकर दलदल में हम धंसे जा रहे हैं। क्या आज हम उन पराक्रमी, त्यागी और धर्मनिष्ठ पूर्वजों के अपनाए मार्ग पर कदम भर भी चलने की क्षमता रखते हैं? जो भगवती न केवल मनुष्यों का, अपितु देवताओं का भी कल्याण करने वाली है, हम उसे "माता" कहते हैं। हमारा और उसका माता और पुत्र का सम्बन्ध है। आज भी हम इस शक्ति-माँ के मंदिर में जाते हैं, परन्तु देवी-भक्ति या मातृ-भक्ति का क्या यही अर्थ है कि भीरू, कायर और गुणहीन होकर रह जाएं? क्या नारायण परिहार, कीर्तिसिंह और वीर लक्षपत सरीखे बहादुर, गुणवान, चरित्रवान् और निष्ठावान् पूर्वजों का इतिहास पढ़ कर हमारी सोई हुई गैरत, और सुषुप्त स्वाभिमान जागेगा नहीं? क्या कोकिला देवी का शील, त्याग और अतुलनीय पराक्रम हमारी देवियों को प्रेरित नहीं करेगा?

आज हमें आपसी ईर्ष्या और घृणा को त्यागकर प्रेम और सद्भाव का वातावरण तैयार करना होगा। हम अपनी गरिमा को याद करें। तभी हम गुण-सम्पन्न और सुसंगठित समाज के रूप में खड़े हो सकते हैं।

अन्त में पाठक बन्धुओं से यही निवेदन करना है कि यदि इस पुस्तक में कुछ त्रुटियां दृष्टिगोचर हों, तो कृपया हमें क्षमा करें और इन त्रुटियों की ओर अधिक ध्यान न दें। भगवती की कृपा से आगामी संस्करण में यह त्रुटियां भी दूर हो जाएंगी।

हमें आशा है कि यह पुस्तक एक नई चेतना का संचार करने में सहायक सिद्ध होगी।

भगवती सब पर कृपा करे।

मन्त्री
हिन्दू शिक्षा समिति (पं०)
किश्तवाड़

मार्गशीर्ष ३०, २०३६
२५ दिसम्बर, १९७९

नवलांकीय

'श्रीमती प्रेम देवी ग्रंथमाला' के प्रथम पुष्प 'श्रीस्थल देवी दर्शनम' का यह दूसरा संस्करण पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए हमें अपार हर्ष की अनुभूति हो रही है। पुस्तक की बढ़ती हुई मांग को देखते हुए एक बड़े अन्तराल के पश्चात् हम यह संस्करण निकाल पाये हैं। यह संस्करण मूल पुस्तक के तद्नुरूप यथावत है। केवल अन्त में फरवरी १९९२ की घटना— माता अठारहा भुजा की प्रतिमा के अपहरण तथा पुनर्प्राप्ति को इस संस्करण में परिशिष्ट के रूप में उल्लेखित किया गया है। माता अठारहा भुजा के प्राचीन काल से चले आ रहे इतिहास के साथ यह एक नई ऐतिहासिक घटना जुड़ गई है या यूं समझिए कि एक नया अध्याय जुड़ गया है।

हम आशा करते हैं कि हमारे इस प्रयास से जनता की मांग पूरी होगी और भक्तजनों की पिपासा एवं मनीषियों की जिज्ञासा शांत करने में सहायता मिलेगी।

सुविज्ञ पाठकों की स्वस्थ आलोचनाओं और उनके ठोस सुझावों को पाकर हमें प्रसन्नता होगी— हम इसका स्वागत करेंगे।

अंत में हम अपने सहयोगी सज्जनों के प्रति हार्दिक धन्यवाद प्रगट करते हैं जिनके निष्काम सहयोग से हम इस नवलांक को निकालने में सक्षम हो पाये। विशेष रूप से हम 'सियाराम प्रिन्टर्स, पहाड़गंज नई दिल्ली' के प्रति भी आभार प्रकट करते हैं क्योंकि उनकी धर्मपरायण मनोवृत्ति और आत्मीय सहयोग के बल पर ही पुस्तक के इस द्वितीय संस्करण को छपवाकर समाज सेवा के इस कार्य को हम पूरा कर पाये हैं।

धन्यवाद।

दिसम्बर, १९९९ **प्रकाशक**

अथ प्राक् कथनम्।

अम्बिका-जनकं धीरं गुरुं गिरिगिरीशयोः।
अगम्यमघहर्तारं प्रणमामि हिमालयम्।।

हिमालय के भीतरी भाग में स्थित किश्तवाड़ की सुरम्य एवं प्रशान्त पुण्यभूमि युग-युगान्तरों से अपने प्राकृतिक सौन्दर्य की ज्योत्सना से निरन्तर मानव-समाज के असंख्य नयन-चकोरों की चिरपिपासा को शान्त करने का कारण बनी हुई है।

सुविख्यात डोगरा राज्य के आविर्भाव से पूर्व जब कि यह वीर-भूमि एक स्वतन्त्र एवं सबल राज्य के रूप में जगति-स्थल पर विद्यमान थी तो उस सुखद काल में इसका विस्तार नागसेन प्रान्त से लेकर सारी तहसील किश्तवाड़ मरम्त इलाका के बिना तहसील डोडा और तहसील रामबन से होता हुआ, तहसील रियासी के गुलाबगढ़ नामक भूखण्ड के अन्तिम छोर तक फैला हुआ था।

इस राज्य की राजधानी कश्मीर के आग्नेय कोण में पुण्यसलिला महानदी चन्द्रभागा के तट पर एक समतल भूखण्ड पर चारों ओर से हिमाच्छादित उच्चतम शैल श्रेणियों के प्राचीर से घिरी हुई, ऐसी प्रतीत होती है मानो देवताओं का नन्दन वन यहां आकर, विराजमान हुआ है। राजतरंगिणी के सुविख्यात औजस्वी लेखक महाकवि कल्हण ने इस प्रदेश को अपनी कृति में काष्टवाट नाम से याद किया है, इसका प्राचीन नाम कश्यपवास भी रहा है। कुछ इतिहास-लेखकों का कथन है कि जब भूस्वर्ग अभी सतीसर के अगाध जल के भीतर ही स्थित होकर, संसार की दृष्टि से

सर्वथा अदृश्य था तो उस काल में किशतवाड़ का सुरम्य भूभाग अपने वास्तविक रूप में विश्व-मंच पर प्रकट होकर, तत्त्ववेत्ता महर्षियों का निवास-स्थान बन चुका था। इस पुण्य-भूमि पर ही स्थित होकर, महर्षि कश्यप ने अपने तपोबल से सतीसर में संचित जलराशि को बाहर निकालने की योजना क्रियान्वित की थी। तभी इस प्रदेश का नाम कश्यप-वास अर्थात् कश्यप के रहने का स्थान पड़ा। भगवती चण्डिका के उपासक महर्षि श्रीपाल, जिसने इस प्रदेश को मानव-समाज का निवास-स्थान बनाने में प्रथम प्रयास किया है, उसने इसे अपने समय में 'कालीगढ़' नाम से स्मरण किया था।

महाभारत के काल में इसका एक अन्य ही नाम लोगों में प्रसिद्ध था, महाभारत के सभा पर्व में लिखा है—

ततः काश्मीर कान्वीरान् क्षत्रियान् क्षत्रियर्षभः।
व्यजयल्लोहितं चैव मण्डलैर्दशभिः सह।।अ०श्लो२७।।१७।।

अर्थात् अर्जुन ने कश्मीर देश के क्षत्रिय वीरों को और दश छोटे-छोटे राज्यों के साथ लोहित-मण्डल को भी जीता। अगले श्लोक में कहा गया है कि इन राज्यों को विजय करने के अनन्तर अर्जुन त्रिगर्त-राज्य में चला गया। कश्मीर और त्रिगर्त के मध्य में जो भू-भाग स्थित है, उसे द्विगर्त-प्रान्त कहते हैं। इस प्रान्त के भीतर से ही होकर त्रिगर्त में पहुंचने का मार्ग है। द्विगर्त-प्रान्त उस काल में एकादश छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था। इन राज्यों का कथन राजतरंगिणी में भी कई स्थलों पर हुआ है, जिनमें किशतवाड़ के नरेश को उत्तम और सुविख्यात बतलाकर इस राज्य की श्रेष्ठता को स्वीकार किया गया है। महाभारत के उक्त श्लोक में कथित लोहित-मण्डल नाम निःसन्देह सुविख्यात किशतवाड़ राज्य के लिए ही

प्रयुक्त हुआ है, क्योंकि लोहित-मण्डल का अर्थ है 'केसर वाला प्रदेश।' द्विगर्त-प्रान्त में किश्तवाड़ ही एक ऐसा प्रदेश है जहां बहुत प्राचीन काल से ही केसर की खेती होती चली आई है और किश्तवाड़ के जिस ग्रामसमूह में केसर की उपज होती है, उसे आज भी लोग 'मण्डल' के नाम से ही याद करते हैं। अत: यह बात स्वीकार करनी पड़ती है कि महाभारत काल में इस प्रदेश का नाम 'लोहित-मण्डल' ही लोगों में विख्यात था।

किश्तवाड़ के सुयोग्य विद्वान् पण्डित संग्राम देव की अप्रकाशित पुस्तक 'राजवंश-कीर्ति कौमुदि' में लिखा है—

स कष्टवारकोदेश: कमनीयोऽति पावन:।
क्रीडास्थानं महेशस्य हिमाद्रेहृर्दयस्थलम।। राज० १।१२।।

इस पद्य में इस प्रदेश का नाम कष्टवारक बतलाकर, इसकी प्रशंसा का उल्लेख इन शब्दों में किया है कि यह सुन्दर, अति पवित्र, शंकर का क्रीड़ा-स्थान और हिमालय का हृदयस्थल है। भद्रवाह में उपलब्ध होने वाले वासुकि पुराण में इसे कष्टनिवारक नाम से सम्बोधित किया गया है।

कष्ट निवारकं देशं चन्द्रभागातटस्थिम्।
समागत: स नागेश: काशमीरेभ्यो भयान्वित:।। वा० पु० ४।१२।

उक्त शुद्ध-संस्कृत शब्दों के अनुसार यहां के भाषा और संस्कृत के प्राचीन विद्वानों ने अपने लेखों में इस देश का नाम 'कष्टवारक' अथवा 'कष्ट निवारक' ही लिखा है।

संस्कृत भाषा से अनभिज्ञ कुछ महानुभावों ने इस प्रदेश के नामकरण से सम्बन्धित जो व्युत्पत्ति उपस्थित की है वह तर्क की कसौटी पर समीचीन नहीं उतरती। उनका कहना है कि 'किष्टा', ज़र्द आलू को और 'वाड़' स्थान

को कहते हैं, पूर्व काल में यहां ज़र्द आलू की उपज अधिक होती थी, इस कारण इसका नाम किश्तवाड़ पड़ा। उनकी यह कल्पना इस हेतु से युक्ति-युक्त नहीं क्योंकि इस बात की, तसदीक न तो लोक-भाषा से और न किसी प्राचीन-लेख से ही होती है। वैदिक कालीन ऋषि भी इस पुण्य-भूमि से पूर्णतया परिचित थे। ऋग्वेद के नदी सुक्त में लिखा है—

"असिक्न्यामरुदवृधे वितस्तर्याजीकये शृणुह्यासुशोभय।
ऋग्वेद १०।७५।५।।

यहां असिक्नी (चिनाब), वितस्ता (जेहलम) और मरुद्वृधा इन तीन नदियों का कथन हुआ है, ये तीनों नदियां परस्पर स्वल्प दूरी पर पाई जाती हैं, वितस्ता कश्मीर और चन्द्रभागा तथा मरुद्वृधा किश्तवाड़ की ओर बहती हैं। महानदी मरुद्वृधा, किश्तवाड़ के भण्डार कोट के स्थान पर चन्द्रभागा से मिलकर, एक रूप हो जाती है। इस नदी का पूर्ण परिचय सर्वप्रथम राजतरंगिणी के अनुवादक सुयोग्य इतिहासज्ञ डॉक्टर स्टाईन और के॰एम॰ मुन्शी महोदय ने संसार को दिया है। जिस प्रान्त में इस नदी का आविर्भाव हुआ है, उसे आज भी लोग 'मरुद्वाह' अथवा 'मड़वाह' कहते है। किश्तवाड़ के इस प्रान्त में यद्यपि आजकल मुस्लिम धर्म के अनुयायी ही अधिक मात्रा में निवास करते हैं किन्तु यहां प्राप्त होने वाली असंख्य देवमूर्तियां, विशल शिवलिंग, देव मन्दिरों के भग्नावशेष और हिन्दू संस्कृति के अन्यान्य चिन्ह आज भी इस बात का संकेत करते हैं कि यह भूमि किसी समय ऋषि-मुनियों की तपोभूमि रही है। मरुद्-वृद्धा के पुण्य तीर्थ के तट पर मरुद्वाह में एक सुरम्य भूखण्ड आज भी देखने को मिलता है, जिसका नाम ऋषि निवास (रिकनवास) है। पूर्व कालीन ऋषि लोग इसी क्षेत्र में निवास करके, अपनी दिनचर्या चलाते थे। किश्तवाड़ में उपलब्ध होने वाले

प्राचीन संस्कृत साहित्य में महानदी मरुद्-वृद्धा का नाम मरुतसुधा लिखा मिलता है और जन-साधारण में यह मड़वसुधर के नाम से प्रसिद्ध है। मरुद्वाह प्रान्त में ब्रह्मसर, ब्रह्माशैल, शशिलिंग, हुतमाता और त्रिसन्ध्या आदि महातीर्थ भी पाए जाते हैं, जिनका संक्षिप्त वर्णन कश्मीर में प्राप्त होने वाली त्रिसन्ध्या महात्म्य नामी पुस्तक में हुआ है। इन ऐतिहासिक तथ्यों के प्रकाश में यह बात स्पष्ट हो जाती है कि वैदिक काल से ही किश्तवाड़ मानव समाज का निवास स्थान बना हुआ था और समय-समय पर इसके कश्यपवास, कालीगढ़, कष्टवारक और लोहितमण्डल आदि नाम रह चुके हैं।

किश्तवाड़ के आदिम निवासी

यद्यपि किश्तााड़ में वर्तमान काल में विविध धर्मों के मनाने वाले लोग बसे हुए हैं किन्तु उनमें से अधिकांश लोग समय-समय पर अन्य प्रदेशों से यहां आकर, आबाद हुए हैं। विशेषकर कश्मीर से आए हुए लोगों की संख्या यहां अधिक देखने को मिलती है। ये लोग क्रूर शासकों के अत्याचारों से पीड़ित होकर, यहां आश्रय पाने में सफल हुए हैं। किश्तवाड़ के उदार-चरित लोगों ने सदैव बिना किसी साम्प्रदायिक भेदभाव के प्रत्येक संकट-ग्रस्त मानव को अपने प्रदेश में आश्रय देकर, इस देश के 'कष्ट वारक' नाम को सर्वथा सार्थक बना दिया है।

किश्तवाड़ के आदिम निवासी राथिर, गणनायक, डाम्बर, सैन और परिहार आदि हिन्दू-धर्म के उपासक क्षत्रिय वर्ण के लोग ही हैं जो कर्त्तव्यपरायण, साहसी और युद्ध-वीर सिद्ध हुए हैं। यह इन वीर क्षत्रियों के युद्ध-कौशल और बलिदान का ही ज्वलन्त उदाहरण है कि कई शताब्दियों तक ये

विदेशी आक्रमणकारियों के असंख्य आक्रमणों का सामना करते हुए, डोगरा-राज्य के प्रादुर्भाव तक इस अपने छोटे से राज्य की स्वतन्त्रता का संरक्षण करने में सतत जागरूक रहे और किसी विदेशी-शक्ति को अपने राज्य पर अधिकार स्थापित करने का कोई अवसर नहीं दिया। ये रण-बांकुरे क्षत्रिय वीर कब और किस कारण से इस पर्वतीय प्रदेश में आकर, आबाद हुए हैं— इस प्रश्न का यथेष्ट उत्तर यद्यपि इतिहास से मिलना बहुत कठिन है फिर भी भारत के सीमान्त विभाग तपोभूमि हिमालय में नेपाल से लेकर, किश्तवाड़ तक बसे हुए क्षत्रिय वर्ण के लोगों की बहुसंख्या को देखकर, प्रत्येक व्यक्ति को यह सोचने में विवश होना पड़ता है कि इस तपोभूमि में तपोनिष्ठ ब्राह्मण वर्ण की आबादी अधिक होनी चाहिए थी किन्तु ऐसा न होने का क्या कारण है। इस विषय में यह निवेदन करना अनुचित नहीं होगा कि पौराणिक साहित्य में स्थल-स्थल पर देवासुर संग्राम का विस्तृत वर्णन लिखा हुआ मिलता है। वे देव और असुर कौन थे और उनका परस्पर युद्ध क्यों होता था— इस बात पर समुचित विवेचन करने पर हम इसी निर्णय पर पहुँचे हैं कि प्राचीन काल में हिमालय के उस पार बसने वाले लोग असुर अथवा अनार्य्य कहलाते थे। आर्य्य लोग धार्मिक, संयमी, परिश्रम-निरत और एश्वर्यवान् थे। असुर लोग, लुटेरे, हिंसक, मायावी और स्वार्थपरायण थे। असुरों को क्रव्याद, राक्षस, निशाचर और दस्यु आदि संज्ञापदों से भी याद किया गया है। इन संज्ञापदों का अर्थ है, जो दूसरों की ज़िन्दगियों से खेल करे, वह असुर; रात्रि में विचरण करने वाला निशाचर तथा दूसरे की उपार्जित सम्पत्ति लूटने वाला दस्यु होता है। इन संज्ञापदों के अर्थों से असुरों के चरित्र का चित्रण सम्यक् प्रकार से होता है। यही दुष्ट लोग रामायण काल से पूर्व हिमालय को पार करके, पुण्य भूमि भारत पर समय-समय अपने आक्रमणों द्वारा जन और धन को क्षति पहुँचाने का कारण बने हुए थे। संस्कृत की सुविख्यात पुस्तक दुर्गा सप्तशती में वर्णित है कि

महामाया भगवती चण्डिका ने हिमालय में ही असुरों के साथ घोर संग्राम करके, उन्हें सर्वथा निस्तेज और हतोत्साह बना दिया था। असुर लोगों के नाम या विशेषण जो उस पुस्तक में अंकित हुए हैं उनसे भी इस विषय के समझाने में पर्याप्त सहायता मिलती है। वहां किसी को शुम्भ, किसी को कम्बु, किसी को विडालाक्ष और किसी को धूम्राक्ष आदि नामों से स्मरण किया गया है। इन संज्ञा पदों के अर्थ पर ध्यान देनेसे कम्बुमुख, विडालाक्ष और धूम्राक्ष आदि विशेषण आज भी हिमालय की दूसरी ओर बसने वाले लोगों की आकृतियों में पूर्णतया देखने को मिलते हैं। अत: यह बात स्वीकार करनी युक्तिसंगत है कि हिमालय की दूसरी ओर बसने वाले लोग ही पौराणिक काल में असुर संज्ञा से याद किए जाते थे। वे ही नृशंस लोग हिमालय को पार करके, अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए, देवभूमि भारत में प्रविष्ट होकर, आतंक फैलाने का कारण बनते थे। आए दिन की इस विपत्ति से प्रजा को सुरक्षित रखने का कोई उचित प्रबन्ध करना अनिवार्य था, अत: यह अनुमान लगाना युक्ति-युक्त होगा कि तत्कालीन भारतीय केन्द्रीय शासक वर्ग ने असंख्य युद्ध वीर, कर्त्तव्यपरायण और राष्ट्र-भक्त क्षत्रियों को जो असुरों की खोपड़ियों का यथेष्ठ उपचार करने की क्षमता अपने भीतर रखते थे, भारत के इस सीमान्त विभाग में सपरिवार बसाकर, राष्ट्र-रक्षा की सुदृढ़ योजना को क्रियान्वित किया। इन राष्ट्र-भक्त एवं रण-चतुर, वीर लोगों के यहां बस जाने और इनके रण-कौशल को देखकर, असुर लोग सर्वथा त्रस्त और क्षीणप्रभ हो गए। राष्ट्र-रक्षा की इस सुव्यवस्था से कष्ट पहुंचाने एवं यहां के धन को लूटने का कोई अवसर प्राप्त नहीं हुआ। इसके बाद भारत पर विदेशियों के आक्रमण प्राय: पश्चिम की ओर से ही होते रहे, जिनके प्रभाव से खण्डराज्यों में बंटा हुआ, विशाल भारत शनै: शनै: विदेशी लुटेरों की दासता की शृंखला से बन्धित होकर, चिरकाल पर्यन्त दु:ख भोगता रहा। उस अन्धकारपूर्ण काल में भी हिमालय में स्थित कुछ

छोटे-छोटे राज्यों के निवासी ही ऐसे थे जो अपने-अपने राज्यों की स्वतंत्रता का संरक्षण करने में सतत प्रयत्नशील रहे, जिनमें किश्तवाड़ के कर्त्तव्य-परायण वीर लोग भी सम्मिलित थे। ये लोग अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय अपने राज्य की स्वतंत्रता को मानते थे। किश्तवाड़ के उत्तरी सीमान्त विभाग में स्थित भूस्वर्ग कश्मीर समय की विचित्र गति के प्रभाव से विविध परिवर्तनों के चक्र में फंसकर, विदेशी लुटेरों के ताण्डव-नृत्य का स्थल बनता रहा। सहसा इसका अपना शक्तिशाली राज्य सदैव के लिए अस्त हो गया। हूण, मुगल और पठान आदि अनेक विदेशी शक्तियों ने अपने क्रूर शासन द्वारा चिरकाल तक जी भर कर इसकी सम्पत्ति का अपहरण करते हुए, यहां के निवासियों को अत्याचार से पीड़ित करके, हतोत्साह बना दिया। उन विदेशी लुटेरों की क्रूर दृष्टि में किश्तवाड़ का छोटा-सा राज्य सदैव ही खटकता रहा। इसके स्वतंत्रत अस्तित्व को मिटाने के लिए, वे भरसक प्रयत्नशील रहे। किन्तु यहां के धीर लोगों ने अपने विचित्र साहस द्वारा उनके प्रत्येक प्रयत्न को निष्फल बनाकर, अपने राज्य के किसी भाग में उन्हें पाँव जमाने का कोई अवसर नहीं दिया। मुग़लों के शासन काल में अधिक आक्रमणों का सामना यहां के लोगों को करना पड़ा। उन आक्रमणों की तीव्र ज्वाला में यद्यपि यहां के प्राचीन दर्शनीय असंख्य भवन और सैंकड़ों विचित्र उपासनागृह मुगलों के हाथों भस्मासात् हुए किन्तु वे दुर्जन लोग यहां के निवासियों के साहसपूर्ण हृदय के मन्दिरों का एक कण भी विचलित करने में सफल-मनोरथ नहीं हुए। इस प्रदेश पर अपना पूर्ण अधिकार जमाने की उनकी योजनायें प्रत्येक बार विफल ही होती रहीं। इस प्रकार भगवती श्रीस्थल वासिनी की वरद कृपा-दृष्टि से यहां के आदिम निवासी युग-युगान्तरों से इस तपोभूमि में स्थित होकर, राष्ट्र-भक्ति के उत्तम व्रत का पालन करते हुए अपना उज्ज्वल इतिहास निर्माण करते रहे।

किशतवाड़ियों के उपास्यदेव

किशतवाड़ियों के निवासी सत्य-परायण, विचारशील, परिश्रमी, परोपकारी, दयावान् एवं धार्मिक थे। भगवान् का चिन्तन करना, दुखियों का संरक्षण, राष्ट्र-भक्ति, सदाचार का पालन और प्रत्येक प्राणी के प्रति सद्भावना रखना ये विशेषताएं उनके कर्त्तव्य में मुख्य स्थान रखती थीं। वे देव पूजा में पर्याप्त निष्ठा रखते थे। उनका प्रत्येक शुभ कार्य भगवती श्रीस्थलवासिनी अष्टादशभुजा देवी की अर्चना से प्रारम्भ होता था।

वे स्वाध्याय करने में कभी प्रमाद नहीं करते थे। प्रधान रूप से उनके स्वाध्याय का ग्रन्थ था 'दुर्गा सप्तशती' और आराध्य देव थे भगवती दुर्गा और भगवान् शंकर। इन्हीं दो शक्तियों के विलक्षण गुणों से प्रेरणा लेकर, वे अपनी दिनचर्या चलाते थे। उपास्य के गुण उपासक में भी अवश्य आ जाते हैं, यह बात उनके जीवन में पूर्णतया देखने को मिलती थी। शान्त वातावरण में वे सदैव भगवान् शंकर की तरह लोक-कल्याण के मार्ग को अपनाकर, दु:ख-संतप्त मानव समाज का संरक्षण करके, आत्म-उल्लास प्राप्त करते थे, किन्तु संघर्षमय काल में साक्षात् चण्डिका का रूप धारण करके, शत्रु-समुदाय पर ऐसे झपट पड़ते थे जैसे चिड़ियों के समूह पर बाज। युद्धकाल में भी वे लोग एक विशेष आचरण का पालन करते थे। उनके खड़ग अपाहिज, वृद्ध, बालक, स्त्री और युद्ध से भागने वाले व्यक्ति पर कदापि नहीं चलते थे। वे आस्तिक लोग शरण में आए हुए, शत्रु से मित्र की तरह बर्ताव करते थे। पूर्वकाल में महर्षि श्रीपाल ने जहां इस प्रदेश को मानव-समाज का निवास-स्थान बनाया था, वहां भगवती अष्टादशभुजा देवी की दिव्य मूर्ति की स्थापना करके, अपने शिष्यों में शक्ति-पूजा की प्रक्रिया का भी प्रचलन कराया। उनके यहां से चले जाने पर यद्यपि महामाया की मूर्ति एक लम्बे समय तक मनुष्यों के दृष्टिपथ से अदृश्य रही, फिर भी

यहां के निवासियों ने कभी कोई प्रमाद नहीं किया, उनकी असीम भक्ति का ही फल था कि नरनाथ अग्रदेव के शासन काल में भगवती की पवित्र मूर्ति ने प्रकट होकर, अपने उपासकों को सर्वथा परितुष्ट बना दिया। इस विषय में जो लोक गीत सुनने को मिलता है उसकी शब्दावली इस प्रकार है—

अग्रदेवस दिच़्यनोस् बढ़याई।
वथख़नन विज़े माजिपान द्राई।।

अर्थात् अग्रदेव को कीर्ति प्रदान करनी थी, इस कारण मार्ग खोदते समय माँ स्वयं ही प्रकट हो गई। नृपति अग्रदेव किसी मार्ग की रचना करवा रहा था, कि वहां उसे जगदम्बा की मूर्ति के दर्शन हुए, उसने श्रद्धा से अग्रालय ग्राम में एक भव्य मन्दिर का निर्माण करके उसमें मूर्ति की स्थापना की। किन्तु समय की विलक्षण गति से एक समय ऐसा भी आया कि अग्रदेव द्वारा निर्मित वह पावन मन्दिर भी दुष्टों के हाथों धराशायी हुआ। उस भयानक काल में माँ की दिव्य मूर्ति पुनः कुछ काल के लिए अदृश्य हो गई। उचित समय के आने पर एक विचित्र ढंग से मूर्ति ने फिर प्रकट होकर, अपने उपासकों को अपने दर्श द्वारा कृतार्थ किया। उस सुखद काल से भगवती की दिव्य मूर्ति श्रीस्थल के पावन ग्राम में एक भव्य-मन्दिर के भीतर रहते हुए उनकी इष्ट सिद्धि करती रहती हैं। श्रीस्थलवासिनी महामाय की वरद कृपादृष्टि से यहां के पुरुष ही नहीं अपितु स्त्रियाँ भी युद्ध क्षेत्र में रण-चण्डी का रूप धारण करके अपने अद्भुत पराक्रम द्वारा शत्रु-समुदाय को सर्वथा निस्तेज और हतोत्साह बनाकर ही विश्राम लिया करती थीं। इस सम्बन्ध में महामाया की उपासिका कोकी देवी के युद्धचातुर्य का कथन करना, यहां की वीर ललनाओ के शौर्य का परिचय देने के लिए पर्याप्त होगा।

कोकी देवी का हस्त कौशल

उन दिनों जब कि शेरशाह सूरी के हाथों पराजित मुग़ल पञ्जाब में स्थित होकर, शक्ति संचय करने में प्रयत्नशील थे तो उन्होंने संवत् १६०४ में किश्तवाड़ के राज्य को हस्तगत करने के लिए मिर्ज़ा हैदर की देख-रेख में एक भारी सेना कश्मीर की ओर से यहां भेज दी, जिसकी सूचना मिलते ही किश्तवाड़ के नरेश राय सिंह ने इस विषय में विचार करने के लिए युद्ध-वीरों की सभा बुलाई जिसमें स्वयं उपस्थित होकर, कोकी देवी ने नरेश से यह प्रार्थना की कि उसे शत्रुओं के इस आकस्मिक आक्रमण को रोकने की आज्ञा प्रदान की जाये। वह बिना किसी की सहायता के ही भगवती की कृपा से मदगर्वित शत्रुओं के दर्प को समूल चूर्ण करने की शक्ति अपने भीतर रखती है। भगवती की उपासना द्वारा उपार्जित जो शौर्य उसमें है, दैवयोग से उसके प्रदर्शन करने का शुभ समय आज प्राप्त हुआ है— अत: यह युद्ध-कार्य उसके हाथों ही पूर्ण होना चाहिए। राजा राय सिंह उस देवी के अपूर्व धैर्य और अलौकिक शौर्य से पूर्णतया परिचित था, इस कारण बिना किसी शंका के उसे रण-क्षेत्र में जाने की आज्ञा प्राप्त हुई। वह वीर ललना अपना विशाल त्रिशूल हाथ में लेकर, दृढ़पथ नामी स्थान पर पहुंची, जहां उसका सामना शत्रुसेना से हुआ। कोकी देवी ने अपने अद्भुत रणचातुर्य से स्वल्पकाल में ही असंख्य मुगल सैनिकों को सदैव के लिए मृत्यु की गोद में सुला दिया। इस आश्चर्यजनक नरसंहार के भयानक दृश्य को देखकर, रण-क्षेत्र में बचे हुए शेष मुग़ल-सैनिकों ने भागते हुए अपने प्राणों की रक्षा की। युद्ध-विमुख शत्रु पर किसी प्रकार का प्रहार करना आर्य परम्परा के विरुद्ध माना जाता है, इस कारण उन रण से भागने वाले त्रस्त और शोक-ग्रस्त मुगल-सैनिकों को इस प्रदेश से अपसरण करते समय कोई क्षति उठानी नहीं पड़ी। जिस स्थल पर उस वीर ललना ने यह रोमाञ्चकारी अद्भुत कौतुक खेला था उस स्थान को आज भी लोग मुग़ल मज़ार के नाम से ही स्मरण करते हैं।

किश्तवाड़ के इतिहास को लेख-बद्ध करने वाले अनेक महानुभावों नें अपनी-अपनी कृतियों में कोकी देवी के इस विचित्र चरित को अपने-अपने ढंग से वर्णन करके अपनी-अपनी मनोवृत्तियों का परिचय दिया है। किसी ने कोकीदेवी के शौर्य को दैवी वरदान, किसी ने साहस का चमत्कार और किसी ने वीरता की पराकाष्ठा बतलाकर उस वीर बाला की भूरि-भूरि प्रशंसा की है, किन्तु कुछ लेखकों के ऐसे लेख भी पढ़ने को मिलते हैं जिनमें इस रण-चण्डी को जादूगरनी और डायन बतलाकर, मुग़ल सैनिकों की दुर्गत को जादू का चमत्कार सिद्ध करने का निरर्थक प्रयास किया गया है। एक लेखक ने यह निराधार बात भी लिख दी है कि युद्ध-स्थल से भागने वाले सैनिकों ने उस मायाविनी स्त्री को मार डाला था। हो सकता है कि ऐसी असत्य कल्पना का सहारा लेकर, लेखक महोदय ने अपने संतप्त हृदय में कुछ शान्ति प्राप्त कर ली हो, किन्तु उसके पास इस प्रश्न का क्या उत्तर है कि यदि अपने उद्देश्य में बाधक सिद्ध होने वाले कारण को ही मुग़ल सैनिकों ने समाप्त कर दिया था तो उन्हें रण-क्षेत्र से सर पर पैर रखकर, भाग जाने की क्या आवश्यकता पड़ी थी? उन्हें तो विजय-पताका लहराते हुए, बड़े समारोह से कश्मीरं में लौट जाना चाहिए था। एक अन्य लेखक का कथन है कि इस युद्ध में केवल छः ही मुग़ल सैनिकों के मारे जाने से मुग़ल-सेना को युद्ध-क्षेत्र से प्रत्यागमन करना पड़ा था। यह बात लिखते समय लेखक को यह विचारने का तनिक ध्यान न रहा कि यदि केवल छः व्यक्तियों के मारे जाने से ही आक्रमण करने वाली सेना हतोत्साह होकर, रण से भाग जाने के लिए विवश हो, तो क्या वह युद्ध-वीरों की सेना थी अथवा एक साधारण पक्षियों का समूह! अभी थोड़ा-सा समय व्यतीत हुआ है कि किश्तवाड़ का एक नवीन इतिहास प्रकाशित होकर, लोगों के हाथों में पहुंचा है। उसमें ऐतिहासिक खोज तो नाममात्र ही है, किन्तु वर्तमानकालिक अधिकारी पुरुषों की प्रशस्ति के लेख पर्याप्त देखने को मिलते हैं। इस कृति

के लेखक ने कोकी देवी के युद्ध-कौशल का कोई कथन न करके, मुग़ल-सेना के पराभव का एक विचित्र कारण खोज निकाला है। उसका कहना है कि युद्ध-स्थल पर आंधी का भारी प्रकोप हुआ, जिससे चारों ओर भयानक अन्धकार छा गया, इस दैवी कोप का लाभ उठाते हुए, वहां छिपी हुई किश्तवाड़ के नरेश की सेना ने अकस्मात् आक्रमण करके, मुग़ल सेना को कुछ क्षति पहुंचाई, जिससे प्रभावित होकर, उसे युद्ध-क्षेत्र से लौट आना पड़ा। सम्भव है कि इस विचित्र कल्पना के निर्माण करते समय लेखक महोदय का मस्तिष्क अरब के किसी मरुस्थल का चक्कर काट रहा हो, वहां इस प्रकार की आंधी का प्रकोप होना सम्भव है किन्तु किश्तवाड़ की भूमि के सम्बन्ध में ऐसी कल्पना करना असत्य ही नहीं अपितु हास्यास्पद भी है। इसके अतिरिक्त यह बात भी विचारणीय है कि आंधी का प्रभाव प्रत्येक प्राणी पर समान रूप से पड़ना स्वाभाविक है किन्तु उक्त सैक्यूलरवादी लेखक महोदय की यह काल्पनिक आंधी भी विचित्र और ग़ैर सैक्यूलर ही सिद्ध होती है, जिसके प्रभाव ने बिचारे मुग़ल-सैनिकों को निष्क्रिय और किश्तवाड़ नरेश की सेना को सक्रिय बनाकर, रण-स्थल को मुग़ल-मजार का रूप प्रदान किया। पक्षपात के दलदल में फंसे हुए, इस प्रकार के इतिहास-लेखक ही वास्तविक घटनाओं का उल्लेख भ्रान्त रूप में करके, पुरावृत-लेखन के कर्त्तव्य की अवहेलना करने के हेतु बनते हैं। कोकी देवी के इस विचित्र युद्ध-कौशल के वास्तविक इतिहास को भले ही विविध काल्पनिक परदों द्वारा छिपाने का प्रयास किया जाये किन्तु इस घटना को कोई भी व्यक्ति लोगों की दृष्टि से ओझल करने में सफल-मनोरथ नहीं हो सकता, क्योंकि इस विलक्षण कृत्य का सम्पूर्ण विवरण शताब्दियों से यहां के निवासियों के हृदय-पटल पर अंकित हो चुका है, यहां का कोई देशी त्यौहार ऐसा नहीं है, जिसमें कोकी देवी का यशोगान लोक-गीतों द्वारा मुक्त कण्ठ से न करते हों।

किश्तवाड़ के प्रायः सभी युद्ध-वीर भगवती अष्टादश भुजा देवी के अनन्य भक्त रहे हैं, जिसकी वरद अनुकम्पा निरन्तर उनके साथ रही है, जिसके प्रभाव से वे लोग सदैव युद्ध-क्षेत्र में अलौकिक साहस प्रदर्शित करके अपना आश्चर्यजनक इतिहास निर्माण करते रहे हैं।

यहां के देवी-भक्त नरेश जो औरंगज़ेब के शासनकाल तक हिन्दू थे और महाराजा गुलाब सिंह द्वारा किश्तवाड़ पर अधिकार ज़माने तक प्रत्येक प्रकार से स्वतन्त्र थे, उनका मनोहर इतिहास कई देशी और विदेशी विद्वानों ने लेखिनी के समर्पण किया है। किश्तवाड़ के अन्तिम हिन्दू नरेश कीर्ति सिंह को किस प्रकार हिन्दू धर्म से पतित कराया गया है, इसका विस्तृत वर्णन निष्पक्ष विदेशी विद्वान् मिस्टर हचीसन् महोदय ने उचित रूप से किया है। पं॰ शिवजी दर की तारीख किश्तवाड़ और राजवंश कीर्ति कौमुदी में भी इस बीभत्स घटना का वास्तविक स्पंष्टीकरण हुआ है।

बादशाह औरंगज़ेब की कश्मीर-यात्रा

कश्मीर की यात्रा करते समय राज्य-संस्था की ओर से दिल्ली के सम्राट औरंगज़ेब का जो स्वागत-समारोह कश्मीर में मनाया जा रहा था, उसमें सम्मिलित होने के लिए अपने प्रतिवेशक मित्र राज्य किश्तवाड़ के नरेश कीर्तिसिंह को भी निमन्त्रण प्राप्त हुआ था जिसका समादर करते हुए, वह निशंक-भाव से कश्मीर चला गया था। राजा से द्वेष रखने वाले कुछ व्यक्तियों ने जिनमें उसका प्रतिद्वंद्वी राम सिंह भी एक था, बादशाह से राजा की निन्दा करते हुए, बतलाया कि वह इस्लाम से घृणा करता है, जिससे किश्तवाड़ प्रदेश में इस्लाम-धर्म के प्रचार में भारी अवरोध उत्पन्न हो रहा है। आजकल वह स्वागत-समारोह में भाग लेने के लिए, कश्मीर में आया हुआ है, अतः उसे अपने दुष्कर्म का उचित दण्ड मिलना चाहिए। औरगंज़ेब

इस बात को सुनकर, क्रोधानल से संतप्त होकर, अपने वास्तविक रूप में आ गया। उसने तत्काल कीर्तिसिंह को बन्दी बनवाकर, तब तक उसे विविध अत्याचारों से पीड़ित करवाया जब तक कि उसने विवश होकर मुस्लिम धर्म में प्रवेश और एक सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर करना स्वीकार न किया।

इस दुष्कृत्य की सूचना मिलते ही यहां के युद्ध-वीर लोगों में प्रचण्ड रोष के उत्पन्न होने से चारों ओर विद्रोह की ज्वाला तीव्र गति से भड़क उठी, जिसमें किश्तवाड़ में स्थित वे सारे लोग जो इस षड्यन्त्र के कारण बने थे, एक-एक करके, लोगों के हाथों से मृत्यु के मुख में धकेल दिए गए; परन्तु इस भयानक स्थिति में किसी निर्दोष व्यक्ति, स्त्री, बालक और उपासनागृहों की कोई क्षति देखने में नहीं आई। किश्तवाड़ निवासी धर्म परायण, वीर लोगों की इस सतर्क-बुद्धि की किश्तवाड़ का इतिहास लेखबद्ध करने वाले सारे लेखक भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं।

किश्तवाड़ में समन्तात् फैला हुआ, वह भयानक विद्रोह तब जाकर समाप्त हुआ जब राजा कीर्तिसिंह ने सकुशल यहां पहुँचकर, उसे शान्त करने का प्रयास किया। विद्रोह की समाप्ति पर राजा ने अपने ऊपर बीतने वाले सारे अत्याचारों का वर्णन करते हुए प्रजा के लोगों से निवेदन किया कि उसे बलपूर्वक धर्म से पतित किया गया है। इस कारण उसका प्रायश्चित करवाकर, पुनः अपने धर्म में सम्मिलित कर लिया जाए। उसकी इस प्रार्थना पर इस विषय में धर्माचार्यों की सम्मति ली गई किन्तु दुर्भाग्यवश उन रूढ़िवादी लोगों ने उसे हिन्दू धर्म में प्रविष्ट होने की आज्ञा नहीं दी।

उनकी इस अनुचित व्यवस्था के कारण एक निष्ठावान् राजपरिवार सदैव के लिए विधर्मी बन कर रह गया। इस बात में सन्देह नहीं कि

तत्कालीन उन ज्ञान शून्य धर्माचार्यों ने अपनी दुर्व्यवस्था द्वारा औरंगज़ेब से भी बढ़कर अत्याचार उस निर्दोष राजवंश पर किया जो वास्तविक रूप में एक सच्चा हिन्दू और सनातन धर्म का पूर्ण उपासक था। हिन्दुओं द्वारा ठुकराये जाने पर भी कीर्तिसिंह और उसके वंशज जब तक किश्तवाड़ में स्थिर रहे, वे अपने पूर्वजों की भांति सदैव हिन्दू धंर्म के पूर्ण श्रद्धालु बन कर रहे। वे अपनी सन्तति के हिन्दू नाम ही रखा करते थे। उनके भवन में भगवती की एक सुन्दर मूर्ति सदैव स्थित रहती थी जिसकी पूजा राज पुरोहित द्वारा शास्त्र-विधि से बड़े समारोह से दैनिक हुआ करती थी। अन्तिम-संस्कार के बिना वे अपने सारे संस्कार हिन्दू-परिपाटी के अनुसार करवाते थे। अपने पूर्वजों की तरह वे प्रतिवर्ष मन्दिर श्रीस्थल देवी में एक वृहद् यज्ञ रचवाकर, उसमें एक भारी भोज दिया करते थे। उनका प्रत्येक शुभकार्य भगवती श्रीस्थल देवी की अर्चना से प्रारम्भ होता था, यद्यपि उनकी शारीरिक वेश भूषा मुसलमानी ढंग की होती थी किन्तु हृदय से वे निरन्तर हिन्दू धर्म के वास्तविक पुजारी ही बने रहे। इस बात के लिए उनकी जितनी भी प्रशंसा की जाए, वह स्वल्पतम ही होगी।

किश्तवाड़ पर बिना किसी युद्ध के महाराजा गुलाब सिंह द्वारा अधिकार जमाने के अनन्तर यहां का राजवंश भी लोगों की दृष्टि से सदैव के लिए ओझल हो गया।

किश्तवाड़ के प्राचीन नरेशों की भांति जम्मू के महाराजाओं ने भी श्रीस्थल के पुण्यतीर्थ की श्रेष्ठता को समक्ष रखते हुए, इस स्थान की समुन्नति का सदैव समुचित ध्यान रखा। राज्य की धर्मार्थ-समिति की ओर से यहां त्रिवार्षिक एक वृहद् यज्ञ नियमपूर्वक होता था, जिसमें हिन्दू और मुसलमान पूर्ण श्रद्धा से सम्मिलित होकर, इस महोत्सव को मनाने में अपना अहोभाग्य समझते थे। तीन दिन के इस पर्व पर लोगों के भोजन का प्रबन्ध धर्मार्थ संसद् के द्वारा ही सम्पादन होता था।

स्वर्गीय महाराजा हरिसिंह के शासनकाल में उनकी आज्ञा से भगवती के वन के कुछ वृक्ष विक्रयार्थ काटे गए, उनसे जो धनराशि प्राप्त हुई, उसके द्वारा राज-कर्मचारियों की देख-रेख में महामाया का विशाल-मन्दिर और धर्मशालाओं की रचना हुई। किश्तवाड़ से लेकर श्रीस्थल ग्राम तक घोड़ों के चलने योग्य एक नवीन मार्ग भी बनाया गया, इस शुभ कृत्य से जहां श्रीस्थल ग्राम की महती शोभा-वृद्धि हुई, वहां प्रतिदिन आने वाले सैंकड़ों यात्रियों के ठहरने का भी समुचित प्रबन्ध हो गया। यात्रियों में जो धनाढ्य लोग इस पावन तीर्थ पर पधारते हैं, वे भी अपनी ओर से किसी कमी की पूर्ति करने में अपना अहोभाग्य समझते हैं। हुश्यारपुर निवासी दानवीर स्वर्गीय राय बहादुर जोधामल्ल कुठयाला ने पर्याप्त धनराशि व्यय करके, नलों द्वारा पीने का जल मन्दिर तक पहुंचाकर, एवं कई स्नानागार निर्माण करवाकर, लोगों की सुविधा के लिए भारी पुण्य कार्य किया है। श्रीस्थल देवी ट्रस्ट भी प्रतिवर्ष कोई न कोई रचनात्मक कार्य करके यात्रियों को सुख पहुंचाने में भरसक प्रयत्न करता रहता है।

श्रीस्थल के पुण्य तीर्थ पर आज भी पूर्व रीति के अनुसार आषाढ़ शुक्लाष्टमी को धर्मार्थ ट्रस्ट की ओर से एक वृहद् यज्ञ बड़े समारोह से प्रतिवर्ष मनाया जाता है, जिसमें बहुत से श्रद्धालु लोग सम्मिलित होकर देवी दर्शन का लाभ उठाते रहते हैं। राज्य-सरकार ने भी इस पुण्य तीर्थ की महत्ता को दृष्टि-पथ में रखते हुए इसे विद्युत प्रकाश से आलोकित करके यहां तक पहुँचने के लिए मोटर रोड की रचना भी प्रारम्भ कर दी है। ये सारे शुभ कार्य यात्रियों को अधिक से अधिक सुख पहुँचाने की भावना से ही किए जा रहे हैं।

श्रीस्थल के श्रद्धाकेन्द्र से सम्बन्धित माहात्म्य की कोई पुस्तक आज तक किसी विद्वान ने प्रकाशित नहीं की है, यही कारण है कि यात्री लोग

बार-बार यहां की धार्मिक संस्थाओं से इस न्यूनता की पूर्ति करने के लिए प्रबल अनुरोध करते रहते हैं। यात्री महानुभावों के इस उचित आग्रह से प्रभावित होकर, यहां की हिन्दू-शिक्षा-समिति किशतवाड़ ने देवी महात्म्य की पुस्तक लेखबद्ध करने की प्रेरणा हमें दी और हमने पुस्तक की रचना करके, उनके द्वारा ही भारत मुद्रणालय दिल्ली में प्रकाशित करने के लिए भिजवा दी। जब यह पुस्तक प्रकाशित होनी थी तो उस भयानक काल में इन्दिरा गांधी की सरकार ने आपात्कालीन स्थिति की घोषणा करके, निर्दोष लोगों को अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए कारागारों में धकेलना प्रारम्भ कर दिया। धर्मनिष्ठ और राष्ट्र-भक्त लोगों के लिए तो यह काल अग्नि-परीक्षा से भी अधिक कठिन था। उधर दिल्ली भारत मुद्रणालय के संचालक और इधर हिन्दू शिक्षा समिति के अधिकांश प्रतिष्ठित और धार्मिक सदस्यों को बन्दी बना लिया गया। उनके परिवार के लोगों को व्यग्र करने में कोई भी प्रयत्न विफल जाने नहीं दिया। उस भीषण अत्याचार का स्मरण आने से आज भी मानसिक स्थिति उद्विग्न हो उठती है, किन्तु देवी लीला अपरम्परा है। भगवती महामाया ने सप्तशती में कहा है—

"इत्थं यदायदा बाधा दानवोत्था भविष्यति।
तदा तदाऽवतीर्याहं करिष्याम्यरि संक्षयम्।।"

भगवती का कथन सर्वथा सत्य सिद्ध हुआ। आपातस्थिति हट गई और जनता ने सुख की सांस ली। जो निर्दोष लोग अकारण ही जेलों में ठूंस दिए गए थे, उन्हें छोड़ दिया गया और स्थिति सामान्य हो गई। कारागार से विमुक्त होते ही भारत मुद्राणालय के संचालक महोदय ने हमें सूचित किया कि पुस्तक का अधिकांश भाग आपत्कालीन स्थिति को भेंट हो चुका है। पुस्तक के थोड़े से बचे-खुचे पृष्ठ भी उन्होंने हमें वापस भेज दिए। अब सारी पुस्तक की रचना फिर से करनी थी। यह कार्य कठिन था क्योंकि

अपने पास भी पुस्तक की पूरी प्रतिलिपि न थी। अन्ततोगत्वा, बची-खुची जो भी सामग्री थी, उसी की सहायता से पुस्तक को पूर्ण करने का संकल्प लिया। भारत मुद्रणालय के संचालक महोदय की ओर से पत्र प्राप्त हुआ जिसमें उन्होंने लिखा कि पुस्तक के नष्ट भाग के पूर्ण होने पर ही पुस्तक अपने वास्तविक रूप में प्रकाशित हो सकती है।

पत्र पढ़ने के अनन्तर इस पुस्तक के नष्ट हुए विभाग का पुन: सुधार करके, इसे प्रकाशित किया गया है।

आभार

इस पुस्तक की रचना में हमने पण्डित संग्राम देव रचित राजवंश कीर्ति कौमुदी, पण्डित प्रभाकर की राजवंशावली और लोक गाथाओं से यथेष्ट सहायता ली है। सर्वश्री डॉक्टर हचीसन्, मिस्टर फ्रेड्रिक ड्रिव साहब, पण्डित शिवजी दर, हशमतुल्ला खाँ और इशरत काश्मीरी आदि महानुभावों द्वारा किश्तवाड़ के इतिहास पर लिखी गई पुस्तकों से भी कुछ न कुछ लाभ उठाया है— अत: हम इन सबके आभारी हैं। पुस्तक के प्रूफ संशोधन आदि कार्य में आदरणीय डॉक्टर चन्द्रकान्तजी एम.ए., पी-एच.डी. प्राध्यापक हंसराज महाविद्यालय, देहली ने पर्याप्त सहायता प्रदान की है, उनकी सत्कृपा से ही यह रचना प्रकाशित हो सकी, हम उनके अत्यन्त कृतज्ञ हैं। हमारी अथवा प्रेस की असावधानी से जो त्रुटियां इस पुस्तक में रह गई हों, कृपया विज्ञ पाठक उनका सुधार करके हमें कृतार्थ करें और यदि इसमें कोई आवश्यक विषय लिखने के बिना रह गया हो या कोई अन्य न्यूनता देखने में आए तो हमें सूचित करें। हम प्रत्येक सुझाव को सादर स्वीकार करने में अपना अहोभाग्य समझेंगे।

कृपाऽभिलाषी
हरिलाल शर्मा

अत्रादौ मंगलाचरणम्

नीलाकाश गतो यथा शशधरः संभ्राजते सर्वथा,
सिंहस्यांसगता तथैव सुखदा विशवेश्वरी शोभते।
यस्या रूप विभा तमो हरति सर्व हृत्स्थितं प्राणिनाम्,
सा भद्रंकुरुतात् सदैव भवतां चन्द्रानना चण्डिका ।।१।।

नीले आकाश में चन्द्रमा जैसे सब प्रकार से चमक रहा है, वैसे ही सिंह के कन्धे पर स्थित सुखदात्री, संसार की स्वामिनी भगवती चण्डिका शोभा दे रही है, जिसके रूप की ज्योति प्राणियों के हृदय में स्थित अज्ञानरूपी अन्धकार को सर्वथा दूर करती है, वह चन्द्रमुखी चण्डिका आप सब श्रोता और पाठक महानुभावों का सदैव कल्याण करती रहे।

अथ निवेदनम्

नत्वा भवानीं रिपुसंघ हंन्त्रीं विश्वेश्वंरी श्रीस्थल वासिनीं च।
जम्बू प्रदेशांन्तरिते सुरम्ये श्री किश्तवाड़ाख्यपुरे निवासी।।२।।
वासिष्ठ गोत्री द्विजवंश भूतो विद्वज्जनानां कृपाऽभिलाषी।
एतन्निबन्धं हरिलाल शर्मा प्रीत्यै विदां ग्रन्थति देववाण्याम्।।३।।

श्रीस्थल् वासिनी, सर्वेश्वरी, शत्रु-समूह का नाश करने वाली, भगवती को प्रणाम करके, जम्मू राज्य में स्थित किश्तवाड़ नाम के नगर का निवासी, ब्राह्मण कुल में उत्पन्न, विद्वानों का कृपाअभिलाषी; वासिष्ठ गोत्री हरिलाल शर्मा विद्वानों की प्रसन्नता के लिए यह निबन्ध गीर्वाण-भाषा में रच रहा है।

अथ पुरावृत्तम

धर्म-प्रधान-देशेऽत्र भारते भव्य भारते।
पदे पदे प्रलभ्यन्ते तीर्थानि विविधानि च।।४।।

आश्रमाश्च महर्षीणां देवानांमन्दिराण्यपि।
वीराणां रण-क्षेत्राणि सतीनां सत्समाधयः।।५।।

यहां उज्ज्वल कीर्ति सम्पन्न, धर्म-प्रधान भारत देश में कदम-कदम पर अनेक तीर्थ, महर्षियों के आश्रम, देवताओं के मन्दिर, वीरों के रण क्षेत्र और सतियों की पवित्र समाधियां मिलती हैं।

श्रद्धाकेन्द्रेषु चैतेषु दुःखसंतप्त मानवाः।
लभन्ते परमां शान्तिं सर्वार्थांश्च मनोरथान्।।५।।

इन श्रद्धा केन्द्रों में दुःखों से संतप्त मनुष्य परम शान्ति, सारे उद्देश्यों और मनोरथों को प्राप्त करते हैं।

इत्थमेव शुभस्थानमेकमतिमनोहरम्।
विद्यते श्रीस्थले ग्रामे शिवया भव्य मन्दिरम्।।७।।

इस प्रकार ही श्रीस्थल ग्राम में एक शुभस्थान, अतिमनोहर भगवती शिवा का उत्तम मन्दिर है।

यत्र नित्यं समागत्य बहवो धार्मिका जनाः।
प्राप्नुवन्ति मनोवाञ्छां भवान्या अनुकम्पया।।८।।

जहां प्रतिदिन अनेक धार्मिक-लोग आकर, भगवती की कृपा से अपनी मनोकामनाओं को प्राप्त करते हैं।

यथा च वैष्णवी देवी स्थिास्ति दुर्गमे गिरौ।
तथैवात्र महामाया रमते तुंग भूधरे।।९।।

जैसे माँ वैष्णवीदेवी एक दुर्गम पर्वत पर स्थित है, वैसे ही यहां महामाया भी एक ऊंचे पर्वत पंर विश्राम करती है।

यास्मिन् भूमिधरे देवी चण्डिकात्र विराजते।
तस्य पूर्व दिशायान्तु प्रचुराः कान्त कायिनः।।१०।।
देवदार्वभिधा वृक्षा नीलच्छद समन्विताः।
सततं तन्मया भूत्वा कुर्वते मातृ-पूजनम्।।११।।

जिस पर्वत पर भगवती चण्डिका यहां विराजमान है, उसकी पूर्व दिशा में सुन्दर विग्रह वाले, नीले पत्रों से युक्त देवदारू के वृक्ष तन्मय होकर, सतत माँ की अर्चना करते हैं।

अधः पश्चिमदिग्भागे गिरेः सरति महानदी।
चन्द्रभागा दिवारात्रं कुर्वती मधुरां ध्वनिम्।।१२।।
सा स्वकीयेन शुभ्रेण शीतलेनाम्भसा सदा।
क्षालयते महादेव्याः पवित्रं पादपंकजम्।।१३।।

पर्वत के नीचे पश्चिम दिग्भाग में महानदी चन्द्रभागा दिन-रात मीठी ध्वनि करती हुई, अपने उज्ज्वल एवं शीतल जल से बहकर निरन्तर महादेवी के चरण-कमलों को धो रही है।

धन्योऽस्ति श्रीस्थलग्रामो यस्य वक्षस्थले सदा।
विलसति जगन्मातुः पूर्णेन्दुरिव मन्दिरम्।।१४।।

श्रीस्थल का ग्राम धन्य है, नित्य जिस के वक्षस्थल पर पूर्ण-चन्द्रमा की तरह जगत्-जननी का मन्दिर शोभित हो रहा है।

प्रावृडम्भोदवच्छ्यामा तडिदिव विभावती।
तस्मिन्देवालये देव्या मूर्तिः स्थिता सुशोभते।।१५।।

उस देव-मन्दिर में वर्षाकालीन मेघ की तरह कृष्ण वर्ण वाली विद्युत के समान प्रभावती भगवती की मूर्ति ठहरी हुई शोभा दे रही है।

भवान्याःसाऽद्भुता मूर्तिर्लोकानां हितकारिणी।
पावने श्रीस्थले ग्रामे मन्दिरे बहु सुन्दरे।।१६।।
स्थापिता केन भक्तेन पुण्यवतोपकारिणा।
इतिवृत्तमिदं सर्वं ज्ञातुमिच्छान्ति सज्जनाः।।१७।।

भगवती की वह लोगों का हित करने वाली मूर्ति पवित्र श्रीस्थल ग्राम और बहुत रमणीक मन्दिर में किस पुण्यवान् और परोपकारी भक्त ने स्थापित की है? यह इतिहास जानने की सभी सज्जन पुरुषों में इच्छा रहती है।

अतोअत्र संप्रवक्ष्यामो मानवानां हितेच्छया।
महात्म्यं जगदम्बायाः पुरावृत्तं च सुन्दरम्।।१८।।

इसलिए हम लोगों की भलाई की इच्छा से यहां जगदम्बा का महात्म्य और प्राचीन इतिहास का कथन करेंगे।

किश्तवाडाख्यदेशोऽयं वर्तते यत्र साम्प्रतम्।
आसीत्तत्र पुराकाले कासारमेकमद्भुतम्।।१९।।
भूश्रृंगाद्रि समारभ्याकुम्कुमाद्रितटान्तकम्।
गोवर्धन सरीनाम सप्तयोजन विस्तृतम्।।२०।।

वर्तमान काल में जहां किश्तवाड़ नाम का प्रदेश स्थित है, प्राचीन काल में वहां भूश्रृंग पर्वत से लेकर कुंकुम् पर्वत के तट तक अर्थात् ठाठरी से सिंहपुरा तक एक सात योजन विस्तार वाला विचित्र गोवर्धन सर नाम का तडाग था।

एकस्मिन्समये प्राप्ते जलं तस्मात् सरोवरात्।
बहिर्विनिर्गतं सर्वं लीलावतश्च लीलया।।२१।।

एक समय के आने पर भगवान् की लीला द्वारा उस सरोवर का सारा जल बाहर निकल गया।

तत्रत एवं संजातं भूमिखण्डमिदं शुभम्।
क्रीडास्थानं महेशस्य हिमाद्रेर्हृदयस्थलम्।।२२।।

उस तालाब से ही भगवान् शंकर का क्रीड़ास्थान और हिमालय का हृदय-स्थल यह किश्तवाड़ का शुभ भूभाग उत्पन्न हुआ।

ततः स्वल्पतमेकालेऽस्मिन् भूखण्डे समन्ततः।
प्रजिज्ञे विपनं रम्यं लतावृक्षैः समन्वितम्।।२३।।

तदनन्तर स्वल्पकाल में ही इस भूखण्ड में चारों ओर लता वृक्षों से युक्त सुन्दर वन उत्पन्न हुआ।

प्रशस्ते श्वापदाकीर्णे द्रुमैश्च बहुभिर्युते।
तस्मिन् सुन्दर कान्तारे पवित्रेऽतिमनोहरे।।२४।।

उस वन्य जन्तुओं से युक्त, बहुतेरे वृक्षों से सम्पन्न, पवित्र, अति मनोहर सुन्दर और श्रेष्ठ वन में—

अति स्वछानि तीर्थान्याविर्भूतानि समन्ततात्।
हर्तॄणि पापसंघस्य दातॄणि पुण्य सम्पदः।।२५।।

पाप समूह के नाश करने वाले, पुण्यरूपी सम्पदा के प्रदायक अति पवित्र तीर्थ सब ओर प्रकट हुए। अर्थात्–

चन्द्रभागा महापुण्या मरुत्सुधा पापनाशिनी।
त्रिसन्ध्या देवपूज्याच शातोदरी विभावती।।२६।।
कल्याणी कमलाक्षी च नदी हैमवती तथा।
नीलो डाम्बरनागश्च रौद्राक्षो गुहवानपि।।२७।।

पवित्र नदी चन्द्र भागा, पापों का नाश करने वाली मरुत सुधा, त्रिसन्ध्या देवपूज्या, शातोदरी, विभावती, नील नाग, डाम्बर नाग, रौद्राक्ष नाग, गुहवान् नाग और–

पूतनागः सुभद्रश्च ब्रह्मक्षेत्रं कपिध्वजः।
नीलगंगा प्रयागश्च सरिता कालिकाभिधा।
विमलो पत्रनाघश्च नीलसरश्च माधवी।
दुग्धदा हुतमाता च शारदा विष्णुवल्लभा।।२८।।

पूतनाग, सुभद्रक, ब्रह्मक्षेत्र, कपिध्वज, नीलगंगा, प्रयाग, कालिका नदी, विमल नाग, पत्र नाग, नीलसर, माधवी नदी, दुग्धा, हुतमाता, शारदा और विष्णुवल्लभा ये सारे प्रधान तीर्थ हैं।

यो नर एषु तीर्थेषु श्रद्धाभक्ति समन्वितः।
स्नानं दानदिकं कुर्यात् संलभते परं पदम्।।३०।।

जो मनुष्य इन तीर्थों पर श्रद्धा-भक्ति से युक्त स्नान और दान आदि करे वह परं पद को प्राप्त करता है।

अथ ऋषि कश्यपस्यागमनम्।

सौन्दर्यमस्य देशस्य दृष्टुमादौ महामुनिः।
सहितोबहुभिः शिष्यैः कश्यपोऽत्रसमाययौ।।३१।।

सबसे पहले इस देश के सौन्दर्य को देखने के लिए बहुत से शिष्यों के साथ महर्षि कश्यप यहां आए थे।

स बहुकालपर्यन्तं स्थितोअत्रं सहससङ्गिभिः।
पुनरस्मात्प्रदेशाच्च गतोऽन्यत्र कुत्रश्चित्।।३२।।

वह ऋषि कश्यप अपने साथियों के साथ यहां बहुत काल तक स्थित रहा, फिर इस देश से किसी अन्य देश में चला गया।

गते तस्मिन् मुनिश्रेष्ठे परिभ्रमणितस्ततः।
श्रीपालः सहितः शिष्यैरिमंदेशं समाययौ।।३३।।

ऋषि-श्रेष्ठ कश्यप के यहां से चले जाने पर फिर इधर-उधर भ्रमण करते हुए अपने शिष्यों के साथ ऋषि श्रीपाल इस देश में आया।

विलोक्यैतं स भूभागं सुन्दरं बहु विस्तृतम्।
कन्दमूलफलैर्युक्तं शोभितं वहुभिर्द्रुमैः।।३४।।
अत्र प्ररचयामास शीघ्रमति मनोहरम्।
कालीगढामिधं ग्रामं प्रचुरजनसंकुलम्।।३५।।

इस सुन्दर, बहु विस्तृत, कन्द-मूल फलों से युक्त और बहुत से वृक्षों द्वारा सुशोभित भूखण्ड को देखकर, शीघ्र ही यहां अति मनोहर, मनुष्यों से भरे हुए, काली गढ़[1] नाम के ग्राम को रच दिया।

---
१. इसे आज 'गालीगड' कहते हैं।

ग्रामस्य पूर्व दिग्भागे निर्मितं देवमन्दिरम्।
स्थापिता तत्र सन्मूर्तिश्चण्डिकाया महर्षिणा।।३६।।

ग्राम के पूर्व की ओर महर्षि ने देव-मन्दिर का निर्माण किया और वहां भगवती चण्डिका की पवित्र मूर्ति स्थापित की।

मुनेर्मन्त्र बलैस्तस्यां मूंर्त्यां स्थितास्वयं शिवा।
सर्वत्र वयापिनी देवी भक्तानां भय नाशिनी।।३७।।

ऋषि के मन्त्र-बल से उस मूर्ति में भक्तों का भय हरने वाली, सर्वव्यापिका, शिवा भगवती स्वयं स्थित हो गई।

अद्यापि सा जगन्माता मूर्तेर्मध्ये च संस्थिता।
करोति लोककल्याणं परित्राणं च दुःखिनाम्।।३८।।

मूर्ति के मध्य में स्थित वह जगदम्बा आज भी लोगों का कल्याण और दुःखियों का संरक्षण करती है।

ततोऽतिस्वल्प काले हि धनधान्य समन्विताः।
बभूवुः सकला लोकाः कालीगढ़ निवासिनः।।३९।।

अर्थचिन्ता विहीनास्तेऽभू वन्विलास लोलुपाः।
परित्यज्य च सद्भावांश्चक्रिरे पाप संचयम्।।४०।।

तदनन्तर थोड़े समय में ही कालीगढ़ के निवासी धन और धान्य से युक्त हो गए। धन-चिन्ता से रहित वे लोग विलास के लोलुप बन गए तथा उन्होंने अच्छे विचारों को छोड़कर, पापों का संचय करना प्रारम्भ कर दिया।

दृष्ट्वा तेषां कुकर्माणि सत्यधर्मपरायणः।
बभूव दुःख संयुक्तः सश्रीपालस्तपोधनः।।४१।।

अपने ग्राम-निवासियों के दुष्कर्मों को देखकर, वह सत्य धर्म-परायण, तपोधन ऋषि श्रीपाल बहुत दुखी हो गया।

गतेस्वल्पतमे काले भवान्या लीलया ततः।
आप्ताभिधं मुनेः शिष्यं जघान कोऽपि दुर्जनः।।४२।।

फिर थोड़े समय के व्यतीत होने पर भगवती की लीला से किसी दुष्ट व्यक्ति ने आप्त नाम वाले मुनि के शिष्य को मार दिया।

विलोक्य शिरसाहीनं शवं तस्य हुतात्मनः।
बभूव शोकसंयुक्तः स धीरो मुनिरुत्तमः।।४३।।
प्रविनश्यत्वयं ग्रामः खिन्नः स्युरस्य वासिनः।
इति प्रदद्य शापं स जगामन्यत्र कुत्रचित्।।४४।।

उस हुतात्मा के शिर से हीन शव को देखकर, वह धीर मुनि-श्रेष्ठ शोकयुक्त हो गया। यह ग्राम नष्ट हो और इसके निवासी दुखी हों, यह शाप देकर, वह किसी दूसरे स्थान पर चला गया।

ततः शापवशादेव धनधान्यादिकैः सह।
ग्रामः कालीगढ़ाख्यः स सत्वरं प्रलयं ययौ।।४५।।

तदनन्तर शाप के कारण से धन-धान्य आदि के साथ ही वह कालीगढ़ नाम का ग्राम शीघ्र नष्ट हो गया।

तस्य ग्रामस्य विध्वंसं विलोक्य ग्रामवासिनः।
विहाय तत्स्थलं सर्वं न्यूषुरन्यत्र ते तदा।।४६।।

उस ग्राम के विनाश को देखकर और उस सारे स्थल को त्यागकर, वे सारे ग्रामवासी लोग तब दूसरे स्थान में आबाद हो गए।

ततो विरचितो लोकै एकस्मिज्छोभने स्थले।
अति मनोहरो ग्रामः कालीमण्डल संज्ञकः।।४७।।

पुनः एक अच्छे स्थल पर लोगों के द्वारा एक अति मनोहर गांव कालीमण्डल नामक रचा गया।

श्रीपालं तस्य शिष्यं च ह्योत्रत्या धार्मिका जनाः।
अधुनापि समर्चन्ति सर्वेषु शुभकर्मसु।।४८।।

महर्षि श्रीपाल तथा उसके शिष्य आप्त को आज भी यहां के धार्मिक लोग सारे शुभ कर्मों में पूजते हैं।

ईलाचलस्य[१] सच्छृङ्गे ह्येकस्मिन् सुन्दरेस्थले।
समाधिर्विद्यतेऽद्यापि तस्याप्तस्य महात्मनः।।४९।।

ईलाचल के शिखर पर एक सुन्दर स्थल में आज भी उस महात्मा आपत की समाधि विद्यमान है।

त समाधिं जनाः सर्वे देवीमन्दिर यात्रिणः।
नमन्ति पूज्यन्ते च श्रद्धायुक्तेन चेतसा।।५०।।

उस समाधि को देवी के मन्दिर की यात्रा करने वाले सारे श्रद्धायुक्त मन से नमस्कार और पूजा करते हैं।

धीराणां रणवीराणां मताख्य ग्रामवासिनाम्।
श्रीपालो मुनिशार्दूलो विद्यते कुल देवता।।५१।।

मता ग्राम के धीर एवं रणवीर निवासी लोगों के मुनि श्रेष्ठ श्रीपालजी कुल देवता हैं।

स्मृति चिन्हं तु तस्यर्षे ग्रामेऽस्त्येकः वितर्दिका।
तां तत्रत्या जनाः सर्वे वन्दन्ते विधिवत् सदा।।५२।।

उस ऋषि का स्मारक ग्राम में एक वेदिका है, उसकी वहां के सारे लोग सदैव विधिवत् वन्दना करते हैं।

---

१ : इलाचल को आजकल लोग 'लाचल' कहते हैं।

अथाग्रदेवस्याख्यानम्

खाद्रिरुद्रमिते वर्षे गते वैक्रम राज्यतः।
मृगयाया विहारायाग्रदेवो धरणी पतिः।।५३।।

कालीगढाख्य कान्तारं जगाम सह सैनिकैः।
ददर्श तत्र दुर्गाया मूर्तिं स गहने वने।।५४।।

एकस्मिन्नश्मपीठस्थां शीर्णे पाषाण मन्दिरे।
वस्त्रालंकार हीनां च धूलिपूरित विग्रहाम्।।५५।।

विक्रमी संवत् ११७० में शिकार खेलने के लिए सैनिकों के साथ राजा अग्रदेव कालीगढ़ नाम के वन को गया। वहां दुर्गम वन में उसने एक टूटे-फूटे पत्थर के मन्दिर में पत्थर की चौकी पर स्थित वस्त्र और अलंकार से रहति तथां धूली से भरे हुए शरीर वाली माँ दुर्गा की मूर्ति को देखा।

विलोक्य प्रतिमां देव्या महाहर्षसमन्वितः।
नमाम श्रद्धया सार्धं भूपालस्तां मुहुर्मुहुः।।५६।।

देवी की मूर्ति को देखकर, अति हर्ष से युक्त राजा ने श्रद्धा से उसे बार-बार नमस्कार किया।

शुद्धोदकेन तां मूर्तिं स्नापयित्वा ततो मुदा।
पूजयामास तत्रैव वनपुष्पैर्विधानतः।।५७।।

फिर उस मूर्ति को शुद्ध जल से प्रसन्नतापूर्वक नहलाकर, वहां पर ही वन के पुष्पों से उसकी विधिवत् पूजा की।

तत्रतः स्वल्पदूरेहि तेन भूमीश्वरेण द्राक्।
अग्रालयाभिधोग्रामो निर्मितोऽति मनोहरः।।५७।।

तदन्तर वहां से थोड़ी ही दूरी पर उस राजा ने अग्रालय नामके अति मनोहर ग्राम की रचना की।

भूपतेराज्ञया तत्र बहुभिः शिल्पकौविदैः।
ग्रामस्य मध्यभागे तु द्विभूमिकात्मकं तदा।।५८।।
शिल्प-कौशल-संयुक्त विशालं तुष्टिदायकम्।
निर्मितं कमलाकारं विचित्रं देव-मन्दिरम्।।५९।।

राजा की आज्ञा से तब बहुत से शिल्पकारों ने ग्राम के मध्य भाग में दो मंजिला, कारीगरी संयुक्त, विशाल एवं आनन्ददायक एक कमल के आकार वाला, विचित्र देव-मन्दिर रच दिया।

विरच्य मन्दिरं रम्यं भूपो धर्मपरायणः।
बहुभिः सज्जनैः सार्धं कालीगढ़ वनं ययौ।।६०।।
संसथाप्य डयने तत्र मूर्ति कल्याणकारिकाम्।
आनिन्ये वनाच्छ्रीघ्रं ग्राममग्रालयं प्रति।।६१।।

मन्दिर की रचना करवाकर, धर्मपरायण राजा बहुत से भद्र पुरुषों के साथ कालीगढ़ वन को गया, वहां पालकी में कल्याणकारिणी मूर्ति को स्थापित करके, शीघ्र वन से अग्रालय ग्राम की ओर ले आया।

ततोऽत्र तेन भूपेन तस्मिन्नवीनमन्दिरे।
धर्मशास्त्रविधानेन मूर्तिः संस्थापिता तदा।।६२।।

राजा ने तब यहां अग्रालय के उस नवीन मन्दिर में धर्मशास्त्र की विधि से मूर्ति की स्थापना की।

अर्चनायै जगन्मातुः कौलाभिधो द्विजोत्तमः।
नियुक्तः सादरं तत्र सत्कृतो बहुभिर्धनैः।।६३।।

राजा ने जगज्जननी की पूजा करने के लिए बहुत प्रकार के धनों द्वारा सम्मानित करके, कौल नाम के ब्राह्मण को वहां आदर से नियुक्त किया।

एवं विधाय सत्कृत्यं प्रत्याजगाम सत्वरम्।
स्वकीयां राजधानीं स प्रजावल्लभ भूपतिः।।६४।।

इस प्रकार शुभ कार्य सम्पादन करके, वह प्रजा का प्यारा राजा अपनी राजधानी में शीघ्र लौट आया।

अग्रालयाभिधो ग्रामोऽद्यापि तस्य महीपते।
मूकवाण्या यशोगानं गायति च निरन्तरम्।।६५।।

अग्रालय नाम का ग्राम उस राजा के यश का गीत आज भी मूकवाणी द्वारा निरन्तर गाता रहता है। अर्थात् अग्रालय शब्द का अर्थ है, अग्रदेव का घर, इस नाम के सुनते ही अग्रदेव का सारा चरित सामने उपस्थित हो जाता है, जब तक यह ग्राम विद्यमान है तब तक अग्रदेव का नाम भी जीवित रहेगा।

इति श्री देवी महात्तम्येअग्रदेवाख्यान नाम द्वितीयः पटलः

अथ कोकीदेव्या युद्ध-कौशलम्

श्रुतिखरस रात्रीशे वर्षे विक्रम राज्यतः।
कश्मीरेषु तदा चासीच्छासको नाज़ुकाभिधः।।६६।।

विक्रमी संवत् १६०४ में कश्मीर में नाज़ुक सुलतान नाम का कोई शासक था।

इंङ्गित्तेन तु तस्यैव हेदरेण प्रशिक्षिता।
हिन्दूराज्यस्य नाशाय लुण्ठनाय च सम्पदः।।६७।।
प्रतापनाय लोकानां खण्डनाय च सद्मनाम्।
अत्रागता महाघोरा मुगलानां वरूथिनी।।६८।।

उस नाज़ुक सुलतान ही के इशारे से और मिरज़ा हैदर द्वारा शिक्षित, हिन्दू राज्य का विनाश करने, सम्पत्ति को लूटने, लोगों को सताने और मन्दिरों को तोड़ने के लिए, यहां मुगलों की एक भयानक सेना आ गई।

कालाग्निरिव सा सेना दहन्ती लोक सम्पदम्।
यत्र तत्र स्थितांल्लोकान् तुतुदे घोरकर्मणा।।६९।।

कालाग्नि जैसी वह सेना लोगों की जायदाद को जलाती हुई, जहां-तहां ठहरे हुए, लोगों को अपने घोर कार्य द्वारा कष्ट पहुँचाती रही।

दीर्घकूर्चा दयाहीना नृशंसा मदोन्मताः।
मुग़ल सैनिका दुष्टा जघ्नुस्ते प्रचुराञ्जनान्।।७०।।

लम्बी दाढ़ी वाले, दयाहीन, अत्याचारी और मदमस्त हुए, दुष्ट मुगल-सैनिको ने बहुत से लोगों को मार दिया।

विलोक्य क्रूरकर्माणि तेषां सिंहपुरादिषु।
एकश्चरः स्थितस्तत्र शीघ्रगामी विचारवान।।७१।।

आगत्यतत्रतः शीघ्र भूमिपालस्य सन्निधौ।
कथयामास तत्सर्वं दुर्वृत्तमाततायिनाम्।।७२।।

सिंहपुरादि में उन सैनिकों के क्रूर कर्मों को देखकर, एक शीघ्रगामी और विचारवान् वहां ठहरे हुए गुप्तचर ने वहां से शीघ्र राजा के पास आकर आततायियों के दुर्व्यवहार का वृत्तान्त कह दिया।

श्रुत्वा तस्य मुखात्सर्वं वृत्तमतिविगर्हितम्।
वभूव क्रोधसंयुक्ता रायसिंहो नराधिपः।।७३।।

राजा रायसिंह ने उस चर की ज़बानी सारे गर्हित वृत्तान्त को सुनकर, वह क्रोध युक्त हो गया, और—

तस्मिन् काले हि भूपेन समाहूताः स्वकिंकराः।
मन्त्रिवर्याश्च वीराश्च कोविदा राष्ट्र-रक्षकाः।।७४।।

राजा ने उसी समय देश-रक्षक, राजकर्मचारी, मन्त्री, वीर और विद्वानों को बुला भेजा।

तषु समागतेषु तत्र नृप संसदि शोभने।
नृपेण कथितंसर्वं कुकर्म व्यभिचारिणाम्।।७५।।

उन सबके राजदरबार में आने पर राजा ने दुष्ट मुग़ल सैनिकों के सारे कुकर्म कह दिये।

भूपालस्य वचः श्रुत्वा बालैका कोकिलाभिधा।
समुत्थाय सभामध्ये प्रोवाच भूमिपं प्रति।।७६।।

राजा के वचनों को सुन कर तब 'कोकिला' नामक एक बालिका सभा के बीच खड़ी हो कर राजा से यूं बोली—

आदेशं देहि मे राजन् शत्रूणां मारणाय च।
प्रसादाश्चण्डिकायास्तान् हनिष्यामि न संशय।।७७।।

हे नरेश! आप शत्रुओं के मारने के लिए, मुझे आज्ञा प्रदान करें, निसन्देह मैं भगवती चण्डिका की कृपा से उनको नष्ट कर दूंगी।

सेविकाअस्मि जगन्मातुर्मयि स्थिताअस्ति सा स्वयम्।
दर्शायामि महाशौर्यं देवी भक्तया समार्जितम्।।७८।।

अहमेकाकिनी राजन् गमिष्यामि रणांगणम्।
तीक्ष्णधारेण शूलेन करिष्ये रिपुसंक्षयम।।७९।।

मैं माँ चण्डिका की सेविका हूँ, वह स्वयं मुझ में स्थित है, अतः मैं भक्ति द्वारा उपार्जित वीरता का प्रदर्शन करूंगी।

हे राजन्! मैं अकेली रणक्षेत्र में जाऊंगी और तेज़ धार वाले नेज़े से शत्रुओं का विनाश करूंगी।

इति श्रुत्वा वचस्तस्या राजा हर्षित-चेतसा।
प्रोवाच सादरं तत्र वाक्यमेतन्मनोहरम्।।८०।।

उस वीर ललना की बात सुनकर, राजा प्रसन्न मन से यह मनोहर वाक्य उस सभा में आदर के साथ बोला।

अयि देवि विशालाक्षि कोकिले बलशालिनि।
धन्यमस्ति महा भागं राज्यमेतन्ममाश्रितम्।।८१।।

कालिकेव महाशक्ति र्यत्रासि त्वं स्थिता स्वयम्।
स्वातन्त्र्यमस्यदेशस्य हर्तुं शक्नोति को जनः।।८२।।

हे महाबलशालिनि! विशालाक्षी कोकिले! यह मेरे शासन में चलने वाला, भाग्यवान् राज्य धन्य है, जहां कालिका जैसी महाशक्ति तुम स्वयं ठहरी हुई हो, इस देश की स्वतन्त्रता को छीनने की किस व्यक्ति में शक्ति हो सकती है।

तव धैर्यं समालोक्य किञ्चिदद्य रणाजिरे।
करिष्यसि महत्कार्यमित्यभिप्रैति मे मनः।।८३।।

तेरे धैर्य को देखकर, तू आज रण-क्षेत्र में कोई बड़ा कार्य करेगी, ऐसा मेरे मन में विश्वास हो गया है।

परित्राणाय दीनानां प्रजाया रक्षणाय च।
मुग़लानां विनाशाय गच्छ शीघ्रं रणस्थलम्।।८४।।

दीन लोगों एवं प्रजा की रक्षा के लिए तथा मुग़लों का विनाश करने के लिए तुरन्त रण-क्षेत्र में चली जाओ।

श्रुत्वा प्रियवचो राज्ञः स बाला नतमस्तका।
प्रणम्य धरणीपालं संसदश्च बर्हिगता।।८५।।

राजा की प्रिय बात सुनकर, वह नत मस्तक युवती राजा को प्रणाम करके, राज सभा से बाहर चली गई।

बहिश्च संसदस्तस्यां गतायां तत्र तत्क्षणे।
तस्या रक्षाकृते राज्ञा गुप्तरूपेण बुद्धिमान्।।८६।।
प्रेषितः सेनया सार्धं सेनानाथो महाबली।
नारायण परीहारो युद्ध-नीतिविशारदः।।८७।।

कोकी देवी के दरबार से बाहर जाने पर, वहां राजा ने तत्काल गुप्त रूप से उसकी रक्षा के लिए, बली, बुद्धिमान् एवं युद्धनीति में चतुर सेनापति नारायण परिहार को युद्ध-क्षेत्र की ओर भेज दिया।

कोकिलासौ ययौ शीघ्रं ग्रामं दृढपथाभिधम्।
तत्र संकुचिते मार्गे कुटिले बहुदुर्गमे।।८८।।
एकस्मिन्नश्मखण्डस्था शूलं धृत्वा निजे करे।
बकवद्ध्यान-मग्ना सा प्रेक्षाञ्चक्रे महारिपून्।।८९।।

वह कोकी देवी दृढ़ पथ नामके गाँव में चली गई, वहां एक संकीर्ण, टेढ़े-मेढ़े मार्ग में हाथ में नेज़ा लेकर, एक चट्टान पर खड़ी बगुले की तरह ध्यान मग्न हुई, शत्रुओं को देख रही थी।

आगमत्कोअपि तन्मार्गे म्लेच्छानां सैनिको यदा।
सा तं निहत्य शीघ्रं हि पातयामास भूतले।।९०।।

उस मार्ग से जब कोई मुग़लों का सैनिक आता था, तो वह देवी उसे तुरन्त मारकर, भूमि पर गिरा देती थी।

इत्थं हतास्तयानेकाः खला दुर्मद सैनिकाः।
खर्परः कालिकादेव्या तेषां शोणेन पूरितः।।९२।।

इस प्रकार उस देवी ने बहुत से दुष्ट और मदमस्त मुग़ल सैनिकों को मार दिया और कालिका देवी का खप्पर उनके खून से भर दिया।

पराक्रमेण वीराया भयास्पद रणाङ्गणे।
कृतान्तस्य मुखे वीक्ष्य पतितान् निजबान्धवान्।।९३।।
याल्लेति भाषमाणास्तेऽवशिष्टा म्लेच्छ सैनिकाः।
परित्यज्यायुधान् सर्वान् पलायाञ्चिक्रिरे द्रुतम्।।९४।।

भयास्पद रण-क्षेत्र में उस देवी के पराक्रम से मौत के मुख में गिरे हुए, अपने बान्धवों को देखकर, युद्ध में बचे हुए वे शेष मुग़ल सैनिक शस्त्र-अस्त्र छोड़कर 'या अल्ला' कहते हुए भाग गए।

इत्थमेष महायज्ञो लोकानां हितकारकः।
कृपाया जगदम्बायाः पूर्णो बभूव सत्वरम्।।९५।।

इस प्रकार यह लोगों का हितकारक महायज्ञ भगवती जगदम्बा की कृपा से तुरन्त सम्पूर्ण हो गया।

यस्मिन् स्थाने तया देव्या हता मुगल-सैनिकाः।
श्मशानं मुगलानां तदद्यापि कथ्यते जनैः।।९६।।

जिस स्थान पर उस देवी ने मुगलों का संहार किया था, उसे आज भी लोग मुग़ल-मज़ार ही कहते हैं।

एतत्कृत्वा महत्कार्यं सा ललना मुदान्विता।
नद्यां मरुतवृद्धायां कृतवती निमज्जनम्।।९७।।
ततः सा सरितातीरे पवित्रेऽतिमनोहरे।
अनार्च श्रद्धया साकं चण्डिकामिष्टदेवताम्।।९८।।

यह बड़ा कार्य करके उस वीर ललना ने हर्ष से युक्त हुए, महानदी मरुतवृद्धा में स्नान किया, तदन्तर उसने नदी के पवित्र एवं मनोहर किनारे पर अपनी इष्ट देवी भगवती चण्डिका की श्रद्धा से अर्चना की।

तत्रतः स्वल्पदूरे हि भागाया दक्षिणे तटे।
प्रजया सह भूपालं स्थितं ददर्श कोकिला।।९९।।

वहां से थोड़े ही दूर चन्द्रभागा के दक्षिण तट पर प्रजा के साथ ठहरे हुए, राजा को कोकिला ने देखा।

उत्तीर्य सरितां कोकी लोकानां हितकारिणी।
अवननाम भूपालं जितपूर्णेन्दु विग्रहम्।।१००।।

लोगों का हित करने वाली कोकी देवी ने नदी को पार करके, पूर्णेन्दु-विजयी शरीर वाले राजा को प्रणाम किया।

तां प्रसन्नाननां वीक्ष्य शत्रूणां कालरूपिणीम्।
उवाच सादरं राजा वाक्यमेतत्सुखावहम्।।१०१।।

उस प्रसन्न मुख, शत्रुओं की काल-रूपिणी को देखकर, राजा ने आदर के साथ यह सुखद वाक्य कहा।

अयि कोकि महाभागे रिपुसंघ-विनाशिनि।
यच्च त्वयाकृतं कार्यं तत् सर्वं वद शोभने।।१०२।।

हे शत्रु समूह का नाश करने वाली! भाग्यवति, भली कोकिले! जो कार्य तुमने किया है, वह सब कह दो।

श्रुत्वा नृपमुखाद्वाक्यं सा बाला प्रश्रयान्विता।
प्रणम्य तं महीपालमिदं वचनमब्रवीत्।।१०३।।

राजा के मुख से उक्त वाक्य सुनकर, वह विनय से युक्त ललना राजा को प्रणाम करके, यह वचन बोली—

अहमेकाकिनी राजन् प्रविश्य समराङ्गणम्।
कृपया जगदम्बाया अहनं प्रचुरान् रिपून।।१०४।।

हे राजन्! अकेली रण-क्षेत्र में जाकर, मैंने जगज्जननी की कृपा से असंख्य शत्रुओं को मार दिया।

यो यो मे निकटे तत्र समागतो मदोन्मतः।
स स एवं त्रिशूलेन हतो मया रणास्थले।।१०५।।
कन्दुकवच्छवस्तस्य निप्रपत्य गिरेरधः।
शातोदर्यां महानद्यां न्यमज्जत्त्वरितं स्वतः।।१०६।।

जो जो दुर्मद सैनिक मेरे पास आया, वह वह मैंने वहां रण-भूमि में त्रिशूल से मार दिंया। गेंद की तरह उसकी लाश पर्वत से नीचे गिरकर, शीघ्र ही महानदी शातोदरी में स्वत: डूब जाती थी।

अधुना वर्तते नैव देशेऽत्र कोऽपि शत्रवः।
भगवत्या महादेव्याश्चण्डिकायाः प्रसादतः।।१०७।।

अब यहां देश में भगवती, महादेवी चण्डिका की कृपा से कोई शत्रु उपस्थित नहीं है।

कोकिलाया मुखाच्छ्रुत्वा वार्तां हर्षसमन्वितम्।
कथितवान् स भूपालो वाक्यमिदं मनोहरम्।।१०८।।

कोकिला के मुख से हर्ष युक्त बात को सुनकर, राजा यह मनोहर वाक्य बोला।

सद्भाग्यवानस्ति मदीयदेशो यत्रास्ति बाले तव जन्म भूतम्।
त्वदीय कार्येण जनाश्च सर्वे विहाय चिन्तामभवन् सुखाढ्याः।।१०९।।

हे बाले! यह मेरा देश बड़ा भाग्यशाली है, जहां तुम्हारा जन्म हुआ है। तुम्हारे कार्य से सारे लोग चिन्ता रहित होकर, सुखी हो गए हैं।

प्राचीन काले दनुजा यथा च चण्ड्या हताश्चण्डपराक्रमेण।
तथैव बाले प्रहतास्त्वयापि दुष्कार्य-रक्ता मुगला असंख्याः।।११०।।

प्राचीन काल में भगवती चण्डिका ने अपने उग्र पराक्रम द्वारा जैसे असुरों को मारा था, वैसे ही तुमने भी दुष्कार्य करने वाले असंख्य मुग़लों का संहार कर दिया।

त्वमस्य देशस्य विभूतिरेका विशालधैर्येण युता बलाढ्या।
त्वं कालिकावद्रिपुसंघहन्त्री त्वमेव सद्भद्रमुखी शिवेव।।१११।।

तुम विशाल धैर्य वाली, बलशालिनी इस देश की एक विभूति हो। कालिका की तरह तुम शत्रु दल का विनाश करने वाली और तुम ही भगवती शिवा जैसी भद्र मुखी भी हो।

त्वया सुकार्यं कृतमद्भुतं यत् शक्नोति कर्तुं नहि कोऽपि ना तत्।
सर्वे मनुष्यास्तवधीरभावं स्तोष्यन्ति नित्यं परमादरेण।।११२।।

तुमने जो अद्भुत, सुकार्य किया है, उसे कोई भी पुरुष कर नहीं

सकता है। सारे मनुष्य तुम्हारे वीर-भाव की बड़े सम्मान से सदैव प्रशंसा करते रहेंगे।

न त्वादृशो विग्रहकेलिकर्ता प्रलभ्यते कोऽपि पुरेतिहासे।
भविष्यकालेअपि मनुष्यलोके न त्वत्समः कोऽपि जनिष्यते च।।११३।।

तुम्हारे जैसा युद्ध-केलि करने वाला पुराने इतिहास में कोई भी मनुष्य नहीं मिलता है और भविष्य काल में भी तुम्हारे समान मनुष्य लोक में कोई उत्पन्न नहीं होगा।

यावद्दिनेशो गगनाश्रितः स्यात् यावद्धरायां मनुजाः स्थिताः स्युः।
तावद्विचित्रां तव युद्धगाथां गास्यन्ति लोकाश्च मुदा परीताः।।११४।।

जब तक सूर्य आकाश में स्थित रहेगा और जब तक मनुष्य पृथ्वी पर विद्यमान रहेंगे, तब तक आनन्द से युक्त हुए, लोग तुम्हारी युद्ध-गाथा को गाते रहेंगे।

ततः सा कोकिला तेन भूमिपालेन सादरम्।
सम्मानिता च तत्रैव वसनाभूषणादिभिः।।१५।।

तदन्तर राजा ने वहां पर आदर के साथ वस्त्र-आभूषण आदि द्वारा कोकी देवी को सम्मानित किया।

पुनस्तत्र स्थिता लोकाः सर्वे हर्षितचेतसा।
जय घोषान् प्रकुर्वाणाः प्रत्याययुः पुरं प्रति।।११६।।

पुनः वहां स्थित सारे लोग प्रसन्न मन से जय-घोष करते हुए नगर की ओर लौट आए।

परेद्यु बहुवस्तूनि समादाय महीपतिः।
ययौ कोकिलया साकं ग्राममग्रालयं मुदा।।११७।।

दूसरे दिन बहुत-सी वस्तुओं को लेकर, प्रसन्नता से राजा कोकिला के साथ अग्रालय ग्राम को गया।

तत्र तेन नृपालेन भक्तया परमया युतः।
समर्चिता जगन्माता विशाले देवमन्दिरे।।११८।।

वहां उस राजा ने परम भक्ति से युक्त विशाल देव-मन्दिर में उस जगदम्बा की अर्चना की।

त्रयस्त्रिंशत्सुराणां वै स्थापितास्तत्र मूर्तयः।
मन्दिरस्य बहिर्भागे कुड्यानाँ विवरेषुच।।११९।।

राजा ने वहां मन्दिर के बाहरी भाग में दीवारों के ताकों पर तैंतीस देवताओं की मूर्तियां स्थापित कीं।

मन्दिरस्य प्रबन्धाय तत्रत्या बहवो जनाः।
नियुक्ता तेन भूपेन विद्वाँसः शिल्पकोविदाः।।१२०।।

मन्दिर के प्रबन्ध के लिए, वहां के बहुत से विद्वान् और शिल्पज्ञ लोग राजा ने नियुक्त कर दिए।

एवं विधाय सर्वाणि सुकार्याणि स बुद्धिमान्।
ततः प्रत्यायौ शीघ्र स्वकीयां राजानिकाम।।१२१।।

इस प्रकार सारे कामों को करके, वह बुद्धिमान् राजा शीघ्र अपनी राजधानी को लौट आया।

अस्य देशस्य वीराणाँ सदितिहास-लेखकाः।
मुक्तकंण्ठेन ते सर्वे सादरं श्रद्धया सह।।१२२।।
स्तुवन्ति कोकिलादेव्याश्चरितमतिनिर्मलम्।
देशभक्तिश्च धैर्यश्च विचित्रं रण-कौशलम्।।१२३।।

इस देश के वीरों का वास्तविक इतिहास-लेखकों ने मुक्त कण्ठ से कोकी देवी के पवित्र-चरित, देव-भक्ति, धैर्य एवं विचित्र रण-कौशल की आदर एवं श्रद्धा के साथ प्रशंसा की है।

कुलीराग्राम वासिन्याः कोकिलायाः सुयोषितः।
क्षत्रियवंश भूतायाश्चरितमिदमङ्गलम।।१२४।।
यः पठेच्छ्रद्धया नित्यं स मनुजोअति धैर्यवान्।
वीरमान्यो महाशूरो भवेदाराति-नाशकः।।१२५।।

क्षत्रिय वंश में उत्पन्न हुई, कुलीरा ग्राम की रहने वाली, श्रेष्ठ ललना कोकी देवी का यह अद्भुत चरित जो मनुष्य नित्य श्रद्धा से पढ़े, वह अति धैर्यवान्, वीरों में मान्य महापराक्रमी एवं शत्रुओं का नाश करने वाला होवे। (कुलीरा, कुलीद ग्राम का प्राचीन नाम था जो बाद में कुलीद के रूप में परिवर्तित हुआ है। कोकी देवी के वंश में भाताशान एक वीर पुरुष हुआ है, इसने राजा मिहरसिंह के शासन-काल में बिसोहली की सेना से युद्ध करके, अच्छी ख्याति प्राप्त की थी।)

इति श्री देवी महात्म्ये कोकी देव्या युद्ध कौशलं नाम तृतीयः पटलः।

अथ संघर्ष कथानकम्

दिल्लीपतेः सलीमस्य शासनारम्भ कालतः।
पञ्चमे प्रमिते वर्ष मासे भाद्रपदे ततः।।१२६।।
हर्तुमस्य प्रदेशस्य स्वातन्त्र्यं सुखदायकम्।
समागता पुनः सेना म्लेच्छानाँ मदगार्विता।।१२७।।

तदन्तर दिल्ली के मुगल बादशाह जहांगीर के शासन काल से पांचवें वर्ष, भाद्रपद मास में इस प्रदेश की स्वतंत्रता को छीनने के लिए पुनः मुग़लों की मद-गर्वित सेना आ गई।

इतस्ततो दहन्ती सा लोकानाँ गृहादिकम्।
प्रविवेश यदा प्रान्तं क्षात्रौकाभिधमुत्तमम्।।१२८।।
पूर्वमेवं स्थिता तत्र वृकयुद्ध-विशारदा।
किश्तवाड़ाधिनाथस्य भूपसिंहस्य वाहिनी।।१२९।।

इधर-उधर लोगों के गृह आदि को जलाती हुई जब वह सेना क्षात्रोक नाम के श्रेष्ठ प्रान्त में प्रविष्ट हुई तो वहां पहले ही किश्तवाड़ के नरेश भूप सिंह की गुरिल्ला युद्ध करने में चतुर सेना ठहरी हुई थी।

ग्रामाद् दृढ़पथाख्यात्सा बहिर्निर्गत्य सत्वरम्।
रुरोध मुगलानां तां पृतनामति कर्कशाम्।।१३०।।
विशालधैर्य्यसंयुक्तैर्बलिभिरार्य सैनिकैः।
सहसाक्रम्य तत्रैव बहवो मुगला हताः।।१३१।।

उस सेना ने दृढ़पथ नाम के ग्राम से बाहर निकलकर, मुग़लों की उस

कठोर सेना को शीघ्र रोक दिया और विशाल-धैर्य सम्पन्न, बलशाली हिन्दू-सैनिकों ने सहसा आक्रमण करके, वहां ही बहुत से मुग़लों को मार दिया।

सर्वेऽपि हतशेषास्ते मुगला भयसंयुताः।
तोबेति भाषमाणा वै पलायाञ्चक्रिरे खलाः।।१३२।।

युद्ध में बचे हुए, वे सारे दुष्ट मुग़ल-सैनिक 'तौबा-तौबा' कहते हुए, भाग गए।

बालं वृद्धं च रोगार्तम् स्त्री च युद्धपराङ्मुखम्।
कातरं शस्त्रहीनं च तथा युद्धस्य दर्शकम्।।१३३।।
क्षतञ्च क्षीणविक्रान्तं जीवदानस्य भिक्षुकम्।
एतांल्लोकान् नहि घ्नन्ति धार्मिका आर्य सैनिकाः।।१३४।।

धार्मिक हिन्दू-सैनिक लोग बालक, वृद्ध, रोगी, स्त्री, युद्ध से विमुख, शस्त्रहीन युद्ध को देखने वाले, ज़ख्मी, क्षीण पराक्रम वाले, कायर एवं जीवन-दान के भिक्षुक इन सभी लोगों को नहीं मारते हैं।

तस्मात्पलायमानान् तान् भीतान् मुग़लसैनिकान्।
नहि जघ्नुर्महावीरा हिन्दूधर्मानुयायिनः।।१३५।।

इसलिए उन भागते हुए मुगल-सैनिकों को हिन्दू-धर्म के अनुयायियों ने नहीं मारा।

अस्मिन् युद्धे सलीमस्य दिल्लीश्वरस्य सेन्यपः।
मिरज़ा महामूदोऽपि मृतोऽत्र समराङ्गणे।।१३६।।

इस युद्ध में बादशाह जहांगीर का सेनापति मिरज़ा महामूद भी यहां युद्ध-क्षेत्र में हत हुआ।

अतिलघुतमें राज्ये स्वसेनायाश्च दुर्गतिम्।
श्रुत्वा दिल्लीश्वरस्तत्र बभूव शोक-संयुतः।।१३७।।

एक बहुत छोटे से राज्य में अपनी सेना की दुर्गति को सुनकर दिल्ली का बादशाह वहां बहुत दुखी हो गया और

यथात्राग्रालये ग्रामे सत्यधर्मपरायणः।
असीदेको महाविद्वान् ब्राह्मणः शक्तिपूजकः।।१३८।।
एकस्मिनदिवसे तेन स्वप्ने दृष्टा महेश्वरी।
अष्टादशभुजायुक्ता सिंहपृष्ठे च संस्थिता।।१३९।।

यहां अग्रालय ग्राम में सत्य-धर्म-परायण, शक्ति का पूजक एक महाविद्वान् ब्राह्मण था, एक दिन उसने अष्टादश भुजाओं से युक्त, सिंह की पीठ पर स्थित भगवती महामाया को स्वप्न में देखा।

शिरसि तस्य विप्रस्य निधाय वरदं करम्।
मधुरया गिरा देवी वाक्यमिदं बभाण सा।।१४०।।
भो भक्त! श्रृणु मे वाक्यं संक्षिप्तं सारगर्भितम्।
चित्ते विधृत्य तत्सर्वं कुरु कार्यं यथोचितम्।।१४१।।

उस ब्राह्मण के सिर पर अपना वरद हाथ रखकर, मीठी वाणी से वह देवी यह वाक्य बोली, हे भक्त! मेरी संक्षिप्त और सारगर्भित बात को सुनो और मन में उस सबको धारण करके, यथोचित कार्य को करो।

कालाधीनमिदं सर्वं यत्किंचिदस्ति संसृतौ।
तस्मात्कालगतिः सम्यक चिन्तनीया मनीषिभिः।।४२।।

कालगतिवशादेव देशेऽस्मिञ्छ भविष्यति।
शत्रुभिः सह लोकानां भयङ्करस्तु विग्रहः।।१४३।।

इस संसार में जो कुछ विद्यमान है वह सब काल के ही अधीन है अत: बुद्धिमान् लोगों को काल की गति को ठीक ढंग से विचारना चाहिए। काल गति के वश से ही इस देश में शत्रुओं के साथ लोगों का भयङ्कर युद्ध होगा।

अहोवद् महत्पापं कर्तुं समुद्यता रिपुः।
स चात्र स्वल्पकाले हि करिष्यति जनक्षयम्।।१४४।।
भवनान्यति रम्याणि देवानां मन्दिराणि च।
त्रोटयिष्यति पापात्मा दयाहीनश्च बर्बरः।।१४५।।

आह! शत्रु पाप करने के लिए उद्यत हुआ है, वह थोड़े ही समय में यहां के लोगों का घात करेगा, वह पापमात्मा, दयाहीन और असभ्य शत्रु सुन्दर भवनों और देव-मन्दिरों को तोड़ देगा।

द्वेषी चित्रकलादीनां परधर्मविदूषकः।
दुर्मदो म्लेच्छसन्दोहो मूर्तिरपि स भेत्स्यते।।१४६।।
अतो मे शोभनां मूर्तिः सद्ग्रामेऽग्रालये स्थिताम्।
कस्मिंश्चिद्वनगर्ते त्वं गोपय भक्त यत्नतः।।१४७।।

चित्रादि ललित कलाओं से द्वेष करने वाला, अन्य धर्मों का विदूषक, वह मद-मस्त म्लेच्छ-संघ मूर्तियों को तोड़ देगा, इसलिए हे भक्त! तुम अग्रालय के पवित्र ग्राम में स्थित मेरी सुन्दर मूर्ति को जंगल के किसी गढ़े में यत्न से छिपा दो।

एकस्मिन् समये प्राप्ते प्रकटिष्यति सा स्वयम्।
इत्युदित्वा महाशक्तिर्ध्यानगम्याभवत्तदा।।१४८।।

एक समय-के प्राप्त होने पर वह मूर्ति स्वयं प्रकट होगी, यह बात कहकर, तब महाशक्ति अन्तर्ध्यान हो गई।

एतद् दृश्यं समालोक्य विप्रः संजातविस्मयः।
सहसैव स धर्मात्मा गतनिद्रस्तदाभवत्।।१४९।।

इस दृश्य को देखकर, विस्मय में पड़ा हुआ, वह धर्मात्मा सहसा ही निद्रा से जाग उठा।

आदेशं जगदम्बायाश्चिन्तयन स मुहुर्मुहुः।
तस्थावतिचिरं ध्याने निमीलित विलोचनः।।१५०।।
ततः प्रभातकाले हि विहाय सकलं भयम्।
उत्थाप्य मन्दिरात् मूर्ति निनायतां वनं द्विजः।।१५१।।

जगदम्बा के आदेश को बार-बार विचारते हुए, वह अपने नेत्र बन्द किए, ध्यान निमग्न हो गया। फिर प्रभात काल में ही सारे भय को त्याग कर ब्राह्मण मूर्ति को मन्दिर से उठाकर, उसे वन में ले गया।

कस्मिंश्चिद्वनगर्ते सा प्रतिमा तेन रक्षिता।
द्वारदेशोऽपि गर्तस्य शिलाखण्डैः प्रपूरितः।।१५२।।
एवं विधाय तत्कार्यं स भक्तः शान्त-चेत्तसा।
सततं चिन्तायाञ्चक्रे शत्रुपीडाञ्च भाविनीम्।।१५३।।

वह मूर्ति उसने किसी जंगली गढ़े में रख दी और गढ़े का द्वार विभाग भी पत्थरों के टुकड़ों से भर दिया, इस प्रकार उस कार्य को करके, वह भक्त शान्त मन से आने वाली शत्रु-पीड़ा के सम्बन्ध में लगातार सोचता रहता था।

अग्रालयाभिंधाद्ग्रामात् स्वल्पदूरे हि संस्थितम्।
स्मारकं तस्य भक्तस्यैकमस्ति लघु मन्दिरम्।।१५४।।
कथ्यतेऽद्यपि तत्सर्वैस्थपूरुदेव मन्दिरम्।
तत्रस्थां प्रतिमां लोका वन्दन्ते श्रद्धया सह।।१५५।।

अग्रालय ग्राम से थोड़ी ही दूरी पर उस भक्त का स्मारक एक छोटा-सा मन्दिर स्थित है, उस मन्दिर को सारे लोग आज भी थपूरुदेव का मन्दिर कहते हैं, उस मन्दिर में स्थित मूर्ति को यात्री लोग श्रद्धा के साथ नमस्कार करते हैं।

थं रक्षमवाचकः शब्दः पूरुश्च नर संज्ञकः।
तस्मात्थपुरुसंज्ञाया अर्थोभवति रक्षकः।।१५६।।

थम् रक्षावचाक शब्द होता है और पूरु पुरुष को कहते हैं, इसलिए थपूरु संज्ञा का अर्थ होता है, रक्षापुरुष। उस भक्त ने एक भयानक काल में भगवती की मूर्ति की रक्षा की थी, इस कारण उसके स्मारक का नाम ही रक्षक का मन्दिर रखा गया।

मुग़लवंशभूतस्य जहांगीरस्य भूपतेः।
गते त्रयोदशे वर्षे राज्यारम्भ कालतः।।१५७।।
पुनस्तेन महीपेन प्रेषितात्र महाचमूः।
हिन्दू-राज्यस्य नाशाय हर्तुं च लोकसम्पदम्।।१५८।।

मुगल वंश में उत्पन्न जहांगीर बादशाह के राज्यारम्भकाल से त्रयोदश वर्ष बाद पुनः उस बादशाह ने यहां हिन्दू राज्य के विनाश के लिए तथा लोगों की सम्पत्ति को लूटने के लिए, एक बड़ी सेना भेज दी।

प्रविश्येमं प्रदेशं सा पूतनेव भयङ्करी।
ददाह लोकवृन्दस्य निखलानि गृहाणि च।।१५९।।
गव्यं पशूंश्च गोपेभ्यो धनिकेभ्यो महद्धनम्।
सस्यं कृषीवलेभ्यश्च हठाञ्जहार सर्वथा।।१६०।।

उस पूतना जैसी भयानक सेना ने इस प्रदेश में प्रवेश करके, लोगों के सारे घरों को जला दिया, ग्वालों से घी, दूध और धनी लोगों से धन तथा किसानों से सब प्रकार का अन्न जबरदस्ती छीन लिया।

अत्रत्यान् प्रचुरांल्लोकान् स्त्रीबालजरणादिकान्।
निर्दोषान् निरीहांश्च निजघान मदोन्मता।।१६१।।
अनर्थकारिणां हस्तैः समालोक्य प्रजाक्षयम्।
पुरं ग्रामांश्च संत्यज्य प्रजया सहितस्तदा।।१६२।।
दुर्गं संश्रयणार्थाय वृकयुद्धस्य पण्डितः।
घोरसिंहो महीपालो जगाम गहनं वनम्।।१६३।।

यहां के निवासी बहुत से स्त्री, बालक और वृद्ध आदि निर्दोष और निरीह लोगों को उस मद-मस्त सेना ने मार दिया। अत्याचारियों के हाथों से प्रजा के विनाश को देखकर, नगर और ग्रामों को छोड़कर, दुर्ग का आश्रय लेने के लिए प्रजा के साथ वृक-युद्ध का ज्ञाता राजा घोरसिंह घने जंगल में चला गया।

तत्रकुगमभृग्वाख्यं[१] पर्वते बहुदुर्गमे।
सत्वरं रचयामास दुर्गमेकं सुदुर्जयम्।।१६४।।
स्थितवा पर्वतशृङ्गेषु नृपादेशवशंवदः।
युद्धवीराश्च दुष्टानां निरीक्षाञ्चक्रिरे गतिम्।।१६५।।

वहां कुगम-भृगु नाम के दुर्गम पर्वत पर शीघ्र ही राजा ने एक दुर्जय

दुर्ग की रचना करवाई। राजा की आज्ञा में रहने वाले युद्धवीर लोग पर्वत की चोटियों पर स्थित होकर, शत्रुओं की गति विधि का निरीक्षण करते रहे।

गोलाकाराश्चग्रावाणः शतोशोऽथ सहस्रशः।
संचितास्तत्र तैः शूरैर्भेत्तुं मुण्डानि विद्विषाम्।।१६६।।
सायका विषसंसक्ताश्चापश्चाति वृहत्तमाः।
शूलास्तु विविधाकारा मुद्गरा दारुनिर्मिताः।।१६७।।
तोमरा भिन्दिपालश्च कुठाराद्विमुखान्विताः।
समरायायुधा एते संगृहीताश्च तैस्तदा।।१६८।।

उन शूरों ने हजारों गोलाकार पत्थर शत्रुओं के सिर फोड़ने के लिए, वहां एकत्रित किए तथा विष-लिप्त बाण, बड़े-बड़े धनुष, अनेक प्रकार के नेज़े, लकड़ी के बने हुए मुग्दर; लोहे के डण्डे, गुलेल में प्रयुक्त होने वाले लोहे के टुकड़े और दो मुंहें कुल्हाड़े ये सारे शस्त्र तब उन लोगों ने युद्ध के लिए इकट्ठे किए।

अथ स्थितेषु सर्वेषु लोकेषु गहने वने।
अधश्च स्थलभागेषु प्रजायाः सकलान्यपि।।१६९।।
भवनान्यति रम्याणि वस्तूनि विवधानि च।
पुस्तकान्यतिमूल्यानि व्यधाक्षु र्म्लेच्छसैनिकाः।।१७०।।

ग्रामादि से सारे लोगों के गहन वन में स्थित होने पर नीचे सम-तल भूभागों से मुग़ल-सैनिकों ने प्रजा के सारे रमणीक सदन, विविध प्रकार की वस्तुएं और अमूल्य पुस्तकों को जला दिया।

सर्वे सुरालयाश्चात्र देवानां रम्यमूर्तयः।
त्रोटितास्तैर्महामूर्खैर्बर्बरैर्जीवघातकैः ।।१७१।।

अग्रालयाभिधे ग्रामे चण्डिकायाश्च मन्दिरम्।
रचितमग्रदेवेन लोकेभ्यः शान्तिदायकम्।।१७२।।
विशालं च महद्रम्यं विचित्रं नेत्रतर्पकम्।
तच्चापि तैर्दयाहीनैः पातितंमे दिनीतले।।१७३।।

उन महामूर्ख, असभ्य और जीवघातक लोगों ने सारे देव-मन्दिर और देवताओं की मूर्तियों को भी तोड़ दिया। अग्रालय ग्राम में राजा अग्रदेव द्वारा निर्मित, लोगों के लिए शान्तिदायक, विशाल, अधिक सुन्दर, विचित्र एवं नयनों को आनन्दित करने वाला भगवती चण्डिका का मन्दिर भी उन दयाहीनों ने पृथ्वी पर गिरा दिया।

तस्य भग्नावशेषत्वस्थुनापि तत्र वर्तते।
दर्शयते नृशंसानां म्लेचछानां हस्तकौशलम्।।१७४।।

उस मन्दिरका खण्डहर आज भी अग्रालय ग्राम में पाया जाता है, जो नृशंस मुगलों के हाथों की चतुराई का दिग्दर्शन कराता है। (इतिहास से पता चलता है कि इस युद्ध में मुगलों की सेना में पच्चीस हज़ार सैनिकों ने भाग लिया था, यह आक्रमण इस प्रदेश पर तीन ओर से हुआ था अर्थात् बानहाल, वाड़वन और सिंह पुर के मार्ग से। इस आक्रमण में मुगल-सेना ने यह निश्चय कर लिया था, कि इस प्रदेश में हिन्दू-संस्कृति का कोई चिन्ह शेष रहने नहीं दिया जायेगा। यही कारण है कि इस प्रदेश में कोई प्राचीन देव-मन्दिर आज देखने को नहीं मिलता। किन्तु यह हर्ष का विषय है कि पूरे एक वर्ष यहां स्थित रहने पर भी मुगल-सेना यहां के ध्येयनिष्ठ लोगों के निर्भय हृदयों में कोई कम्पन उत्पन्न करने में सफल-मनोरथ नहीं हो सकी। किश्तवाड़ के हिन्दू राज्य को कश्मीर-राज्य में सम्मिलित करने का उसका स्वप्न अधूरे का अधूरा ही रह गया।)

इति श्री दुर्गा महात्म्ये संघर्ष कथानकं नाम तृतीयः पटलः।

अथ मन्दिर-निर्माण प्रकरणम्।

आसीदेकः पुराकाले गोपो धर्मपरायणः।
अग्रालयस्य वास्तव्य क्षात्रवंशसमुद्भवः।।१७५।।
गच्छतिस्म स कान्तारं प्रत्यहं धेनुभिः सह।
शृङ्गिणीनां कृते तत्र चक्रे घाससंचयम्।।१७६।।

पुराने समय में धर्म-परायण, अग्रालय ग्राम का निवासी, क्षात्रवंश में उत्पन्न एक ग्वाला था। वह प्रतिदिन गायों के साथ वन को जाता था और वहां गायों के लिए घासादि का संग्रह किया करता था।

तस्य च धेनवः सर्वा प्रभ्रामन्त्य इतस्ततः।
चचरुस्तरुणान् घासान् पपुश्च निर्मलं जलम्।।१७७।।
तासु सुरभिरेकासीच्छ्वेता सर्वाङ्गसुन्दरी।
सा च प्रतिदिनं तत्र स्थित्वैकस्य तरोस्तले।।१७८।।
भक्षयामास पत्रांणि तत्तरोः पतितानिहि।
जग्ध्वा च तानि सा नित्यं बभूववाति पयस्विनी।।१७१।।

उसकी गाएं इधर-उधर फिरती हुई, कोमल घास को चरती और निर्मल जल को पीती थीं। उन गायों में सर्वाङ्ग सुन्दरी एक सफेद रंग की गाय थी। वह प्रतिदिन वहां एक वृक्ष के नीचे स्थित होकर, उस वृक्ष से गिरे हुए पत्तों को ही खाकर, नित्य अधिक दूध देने वाली बन गई थी।

नित्यं तस्याः पयोवृद्धि समालोक्य स बुद्धिमान।
केन भक्ष्येन में धेनुरभवद्बहुदुग्धदा।।१८०।।
इति संचिन्तयामास हर्ष निभृत चेतसा।
वीक्षमाणश्च तं हेतु चकार दैनिकीं क्रियाम्।।१८१।।

वह बुद्धिमान ग्वाला नित्य उस गाय के दूध की वृद्धि को देखकर, 'किस खाद्य पदार्थ से मेरी गाय अधिक दूध देने वाली बन गई है,' यह बात प्रसन्न मन से विचारता था और उस कारण की खोज करता हुआ, अपना दैनिक कार्य करता रहता था।

एकस्मन्दिवसे तेन गोपालेन वनावनौ।
श्रेष्ठभाग्यवशाद् दृष्टं दृश्यामेकं मनोहरम्।।१८२।।
छायायां वन वृक्षस्य शिलाखण्डे च संस्थिता।
तडिद्वद् भासमानेव दृष्टैका तत्र बालिका।।१८३।।

एक दिन उस ग्वाले ने श्रेष्ठ भाग्यवश वन-भूमि में एक मनोहर दृश्य देखा। जंगली वृक्ष की छाया में शिला-खण्ड पर स्थित, विद्युत् के सदृश प्रकाशित हुई-सी एक बालिका को देखा।

स्थापित्वा सा स्वकं हस्तं धेनोःशिरसि कन्यका।
जगौ विलक्षणं गीतं मुनिचित्तविमोहनम।।१८४।।
द्रुतमसौ ययौ तत्र यत्रासीत् सा विभावती।
प्रणम्य शिरसा बालां प्रोवाच सादरं वचः।।१८५।।

वह कन्या गाय के सिर पर अपना हाथ स्थापित करके, मुनियों के चित्त को मोहित करने वाले गीत को गा रही थी। वह ग्वाला शीघ्र उस स्थान पर चला गया जहां वह तेजस्विनी बालिका स्थित थी। उसे सिर से प्रणाम करके, आदर के साथ यह वचन बोला।

त्वं कासिं बाले कमलेव कान्ता स्मेराननना पद्मदलायताक्षी।
गन्धर्वकन्या वनदेवता वा बाला सुराणापि मानवी वा।।१८६।।
एकाकिनी घोरतमं वनं त्वं कस्मातप्रदेशादिह चागतासि।
किं कर्मकर्तुं यतसे सुभद्रे सर्वं हि तद्ब्रूहि सुलोचने द्राक।।१८७।।

हे बाले! लक्ष्मी के समान सुन्दर, प्रफुल्लित मुखवाली और कमल-दल के समान विशाल नयनों से युक्त तुम कौन हो? कौन-सा काम करने के लिए प्रयत्न कर रही हो? हे सुलोचने! वह सब शीघ्र कहो।

हे सुभद्रे! तुम अकेली यहां भयानक वन में किस प्रदेश से आई हो? कौन-सा काम करने के लिए प्रयत्न कर रही हो? हे सुलोचने! वह सब शीघ्र कहो।

आकर्ण्य वाक्यं वनवासिनस्तद्बभाण रम्यं वचनं तदा सा।
हे गोप! नैवास्मि सुरात्मजाऽहं नैवास्मि का चिद्वनदेवतैव।।१८८।।
एकास्मि कन्या द्विजवशं भूता हिताय नृणां विचरामि लोके।
कश्मीर देशादिह चागतास्मि रहस्यपूर्णां वदितुं सुवार्त्ताम्।।१८९।।

उस वनवासी के वचन सुनकर, उस बालिका ने तब सुन्दर बात कही कि हे गोपाल! मैं न तो कोई देवकन्या हूँ और न ही कोई वन-देवता ही हूँ। मैं द्विज वंश में उत्पन्न एक कन्या हूँ। मनुष्यों के हितकार के लिए संसार में फिरती रहती हूँ, मैं कश्मीर देश से एक रहस्यभरी बात कहने के लिए यहां आई हूँ।

श्रुत्वा वचो मे कुरु पोरुषं त्वं सद्यस्ततः प्राप्नुहि धर्मलाभम्।
पराक्रमेणैव भवन्ति लोका मानुष्यलोके जन-वृन्द-मान्या।।१९०।।

अत्रास्ति रम्या वन्कन्दरैका तस्यां भवान्याः प्रतिमा स्थितास्ति
सुखाय नृणां परमार्थसिद्ध्यै तां मार्गयित्वा सुयशो लभस्व।।१९१।।

मेरी बात को सुनकर, तुम पुरुषोचित कार्य करो और तुरन्त ही धर्म का लाभ पाओ, क्योंकि पराक्रम से ही लोग मनुष्य-लोक में जन-समुदाय के मान्य बन जाते हैं। यहां एक सुन्दर वन-कन्दरा है, जिसमें भगवती की मूर्ति स्थित है। मनुष्यों के सुख के लिए और परमार्थ सिद्धि के अर्थ उसे खोजकर, तुम यश का लाभ प्राप्त करो।

पाषाणखण्डानिह संस्थितान् त्वं यत्नेन गोपाल निराकुरुष्व।
द्वारं गुहायास्त्वरितं प्रलभ्य तत्रैव संद्रक्ष्यसि दिव्य मूर्तिम्।।१९२।।
दुःखातुराणां सकलार्तिहन्त्री कल्याणदात्री प्रतिमा भवान्या।
करिष्यते सा जगतः सदैव महोपकारं सुखवर्धनं च।।१९३।।

हे गोपाल! यहां पड़े हुए पत्थरों के टुकड़ों को यत्न से हटा दो और शीघ्र गुहा के द्वार को प्राप्त करके, वहां ही दिव्य मूर्ति को देखोगे। दुःख पीड़ितों के सारे दुःख को हरने वाली, कल्याणदात्री वह भगवती की मूर्ति सदैव संसार का महोपकार और सुख की वृद्धि करेगी।

इत्युक्त्वा सा विशालाक्षी कन्यकान्तर्दधे तदा।
लीलां तस्याः स संवीक्ष्य ह्याश्चर्य चकितोअभवत्।।१९४।।

यह कहकर, तब विशाल नेत्रों वाली कन्या अन्तर्ध्यान हो गई। उसकी लीला को देखकर, वह आश्चर्य-चकित हो गया।

तस्मिन्काले हि गोपेन कृतं कार्यं यथोचितम्।
स्वल्पेनैव प्रयासेन प्राप्ता मूर्तिर्मनोहरा।।१९५।।

ग्वाले ने उसी समय यथोचित कार्य किया और थोड़े से ही परिश्रम द्वारा भगवती की मनोहर मूर्ति प्राप्त कर ली।

दृष्ट्वा मूर्ति जगन्मातु हर्षनिर्भर मानसः।
पुण्यशीलःस गोपालः प्रार्थयामास चण्डिकाम्।।१९६।।

जगन्माता की मूर्ति को देखकर, उस प्रसन्न मन वाले, पुण्यशील गोपाल ने भगवती-चण्डिका की प्रार्थना की। यथा—

मातश्चण्डपराक्रमे विकसिताम्भोजानने चण्डिके।
ब्रह्माविष्णुहरादिभिः सुरमुखैः संपूजिते शारिके।
मूर्खोऽहं न तवार्चनस्य सुविधिं जानामि मन्त्रं नहि।
त्रैलोक्येश्वरी भक्त-कल्पलतिके त्वं सेवकं पाहि माम्।।१९७।।

हे उग्र पराक्रम करने वाली मां! प्रफुल्लित कमल के समान मुख वाली चण्डिके! ब्रह्मा, विष्णु, शंकरादि मुख्य देवताओं से पूजित शारिका गवती! मैं मूर्ख तेरी पूजा की विधि और मन्त्र को नहीं जानता हूँ। तीन लोकों की स्वामिनि! भक्त-कल्पलते! तुम मुझ सेवक की रक्षा करो।

इत्थं प्रार्थयता तेन भक्तियुक्तेन चेतसा।
पूजिता प्रतिमा देव्या वन पुष्पैश्च सादरम्।।१९८।।

इस प्रकार प्रार्थना करते हुए, उस ग्वाले ने भक्ति युक्त मन से आदर के साथ वन के पुष्पों द्वारा भगवती की मूर्ति की पूजा की।

पुनरादाय शर्वाण्या मूर्तिं मंगलकारिणीम्।
प्रतस्थौ तत्रतो गोपो ग्राममग्रालयं प्रति।।१९९।।
भारखिन्नस्तु मार्गेऽसावेकस्यां वनावनौ।
शनैः संस्थाप्य तां मूर्तिं विश्रमितुमुपाविशत्।।२००।।

फिर भगवती की मंगलकारिणी मूर्ति को लेकर, वह ग्वाला वहां से अग्रालय ग्राम-की ओर रवाना हुआ। भार से खिन्न हुआ, वह मार्ग में एक वन-भूमि पर शनैः मूर्ति को स्थापित करके, विश्राम लेने के लिए बैठ गया।

विश्रम्य तु पुनर्मूर्ति नेतुं येते स बुद्धिमान्।
परञ्च बहुभियत्नैस्तत्रतो नैव सोत्थिता।।२०१।।
आश्चर्य चकितो भूत्वा मूर्तिं नमन मुहुर्मुहुः।
चिन्तयामास गोपालो देव्या लीलामलौकिकीम्।।२०३।।

विश्राम करके, फिर वह बुद्धिमान् उस मूर्ति को ले जाने के लिए प्रयत्न करने लगा, किन्तु बहुत से यत्नों द्वारा भी वहां से वह नहीं उठी। ग्वाला आश्चर्य-चकित होकर, बार-बार मूर्ति को प्रणाम करता हुआ, देवी की अलौकिक लीला को सोचता रहा।

आगत्य तत्रतो ग्रामं तेन शीघ्र निवेदितः।
मूर्ति प्राप्तिसमाचारो मुख्याय ग्रामवासिनाम्।।२०३।।

वहां से शीघ्र ग्राम में आकर, उसने मूर्ति की प्राप्ति का समाचार ग्राम-वासियों के मुखिया को निवेदन किया।

श्रुत्वा तस्य मुखाद्वाक्यं स नेताऽभून्मुदान्वितः।
सर्वानल्लोकान् समाहूय बभाण वृत्तमुत्तमम्।।२०४।।
कृत्वाअग्रे धेनुपालं तं साकं ग्रामनिवासिभिः।
ययौ तत्र स धर्मात्मा यत्रासीत् प्रतिमा स्थिता।।२०५।।

उसके मुख से वह बात सुनकर, मुखिया बड़ा आनन्दित हुआ और ग्राम के सारे लोगों को बुलाकर, वह श्रेष्ठ वृत्तान्त कह दिया। फिर ग्रामवासियें के साथ उस ग्वाले को आगे करके, वह धर्मात्मा मुखिया वहां चला गया जहां मूर्ति विराजमान थी।

देव्या मूर्तिं समालोक्य सर्वे हर्षसमन्विताः।
जयघोषान् प्रकुर्वन्तः प्रणेमुर्भुवनेश्वरीम।।२०६।।

पुनः स प्राञ्जलिर्भूत्वा नेता ग्रामनिवासिनाम्।
पूजयामास शर्वाणीं जगौ स्तोत्रं ततः परम्।।२०७।।

देवी की मूर्ति को देखकर, प्रसन्नता से युक्त सारे लोगों ने जयघोष करते हुए, भुवनेश्वरी को नमस्कार किया। फिर ग्रामीणों के नेता ने हाथ जोड़कर, शर्वाणि की पूजा की और उसके बाद भगवती की स्तुति का गायन किया, यथा—

मणिमालिकया परिलस्तगलां बहुसुन्दरकाञ्चन मौलियुताम्।
शुचिश्रुभ्रमनोहरचेलधरां प्रणमामि शिवां भवतापहराम्।।२०८।।
रिपुघातक केसरिपृष्ठगतां मदगर्वितशुम्भ विनाशकराम्।
ललिताकृतिमूर्जितशक्तिमयीं प्रणमामि शिवां भवतापहराम्।।२०९।।

मणिमाला से सज्जित कण्ठ वाली, अति सुन्दर स्वर्ण के मुकुट से युक्त, उज्ज्वल, श्वेत एवं मनोहर वस्त्रों को धारण करने वाली, संसारिक दुःखों को हरने वाली भगवती शिवा को मैं नमस्कार करता हूँ।

शत्रुओं के घातक सिंह की पीठ पर स्थित, मद-मस्त शुम्भ दैत्य को मारने वाली, सुन्दर आकृति से युक्त एवं उत्कृष्ट शक्ति सम्पन्न, संसारिक दुःखों को हरने वाली, भगवती शिवा को मैं नमस्कार करता हूँ।

अरविन्ददलायत नेत्रवतीं परिपूर्णसुशुभ्र शशाङ्कमुखीम्।
विधिशम्भुरमापतिभिः प्रनुतां प्रणमामि शिवां भवतापहराम्।।२१०।।
असिमुद्गरचापशरैः सहितां मदगर्वित दैत्य विनाशकराम्।
शरणागत भीतिहरां वरदां प्रणमामि शिवां भवतापहराम्।।२११।।

कमलदल के समान नेत्रवाली, परिपूर्ण स्वच्छ चन्द्र के सदृश मुख वाली, ब्रह्मा, शिव और विष्णु से प्रशंसित, संसारिक कष्टों को हरने वाली भगवती शिवा को नमस्कार करता हूँ! खड्ग, मुद्गर, धनुष और तीरों से

युक्त, मद-गर्वित असुरों का नाश करने वाली, शरणागत के भय को दूर करने वाली, वरदात्री, संसारिक दुःख को हरने वाली भगवती शिवा को मैं नमस्कार करता हूँ।

रणरङ्गनटीं विकटां त्रिपुटां परमद्भुत संगरकेलिरताम्।
हरचेतसि नित्य निवासकरां प्रणमामि शिवां भवतापहराम्।।२१२।।

रण-रङ्ग-शाला की नटी, विचित्र युद्ध-क्रीड़ा में निरत, भगवान् शङ्कर के हृदय में नित्य निवास करने वाली, संसारिक दुःखों को दूर करने वाली भयङ्कर त्रिपुटा देवी, भगवती शिवा को मैं नमस्कार करता हूँ।

एवं संस्तुत्य शर्वाणीं तस्यामूर्तेः स बुद्धिमान्।
रक्षणाय प्रबन्धन्तु कृतवांश्च यथोचितम्।।२१३।।
मूर्तिप्राप्तिसमाचारं वदितुं तेन वै ततः।
एकश्च प्रेषितः प्रेष्यस्तत्रतो नृपसन्निधौ।।२१४।।

इस प्रकार भगवती की स्तुति करके, उस बुद्धिमान् ने मूर्ति के संरक्षण का यथोचित प्रबन्ध किया और तदनन्तर मूर्ति की उपलब्धि का समाचार कहने के लिए वहां से एक संदेश वाहक को राजा के पास भेज दिया।

राजधानीं समागत्य वृत्तं तेन निवेदितम्।
किश्तवाडाधिनाथाय महासिंहाय मानिने।।२१५।।

उस संदेहवाहक ने राजधानी में आकर, किश्तवाड़ के मानी राजा महासिंह को सारा वृत्तान्त निवेदन कर दिया।

तस्य व्यक्तेर्मुखाच्छ्रुत्वा वाचिकं हर्षदायकम्।
जगाम मन्त्रिभिः सार्धं ग्राममग्रालयं नृपः।।२१६।।

तगरैः पिंगलाभिश्च दाडिमैर्वनहेरुकैः।
सुरम्यैर्दीर्घशाखैश्च करीरैर्देवदारुभिः।।२१७।।
लसितं सद्रुमैर्युक्तं नीलाभं सुमनोहरम्।
तद्वनमागतो द्राक् स यत्रासीत् प्रतिमास्तिथा।।२१८।।

उस सन्देश-वाहक के मुख से हर्ष-प्रद समाचार सुनकर, राजा मन्त्रियों के साथ अग्रालय ग्राम को गया। अगर, शीशम, दाडिम, वन हेरुक, सुन्दर चीड़, करीर और देवदारु आदि उत्तम वृक्षों से सुशोभित हरे-भरे एवं मनोहर उस वन में राजा शीघ्र आ गया जहां भगवती की मूर्ति स्थित थी।

तत्रास्था मानवः सर्वे दृष्ट्वा तं धरणीपतिम्।
बभूवुर्हर्षसंयुक्ताश्चक्रिरे तस्य सत्कृतम।।२१९।।
जयध्वनीः प्रकुर्वन्तः सर्वे भक्तिसमन्विताः।
निन्युस्तं सादरं सद्यो भवान्या मूर्तिसन्निधौ।।२२०।।

राजा को देखकर, वहां ठहरे हुए, सारे लोग हर्षित हो गए। उन्होंने राजा का स्वागत किया और जयध्वनियां करते हुए, तत्काल उसे आदर के साथ भगवती की मूर्ति के पास ले गए।

उद्यतादित्य संकाशां वनपुष्पैरलंकृताम्।
अष्टादशभुजायुक्तां सिंहस्कन्धे च संस्थिताम्।।२२१।।
संवीक्ष्य तत्र तां मूर्तिं ननाम शिरसा नृपः।
स्तुता ततो महादेवी तेन प्राञ्जलिना मुदा।।२२२।।

उदित हुए सूर्य के समान, वन पुष्पों से अलंकृत, अष्टादश भुजाओं से युक्त, सिंह के कन्धे पर स्थित उस मूर्ति को देखकर राजा ने सिर से नमस्कार किया। फिर प्रसन्नता से हाथ जोड़े हुए भगवती का गुण-कीर्तन किया, यथा—

नमो नमस्तेअखिलालोकमातः स्मेराननने कञ्जदलायताक्षी
नमो नमस्ते वरदे भवानि श्रीचण्डिके चण्डपराक्रमाढ्ये।।२२३।।
यदा यदा दुर्धरदैत्यसंघः पिशाचलीलां प्रकरोति लोके।
धर्मस्य नाशाय तनोति जालं निर्दोषलोकान् तुदते दुरात्मा।।२२४।।

हे अखिल लोकों की मां! प्रफुल्लित मुखवाली! कमल दल के समान नेत्र सम्पन्न! वरदात्री, भवानी! चण्ड पराक्रम से युक्त चण्डिके! आपको नमस्कार है। जब-जब दुरात्मा दैत्य समूह संसार में पिशाच-लीला करता है, धर्म के नाश के लिए जाल रचता है और निर्दोष लोगों को सताता है।

तदा तदात्वं ह्यवतीर्य देवि करोषि शीघ्रं दलनं रिपूणाम्।
परोपकारं च विमानितानां संस्थापनं धर्मसनातनस्य।।२२५।।
कुरङ्गनेत्रे शरदिन्दुवक्त्रे! दुर्गे सुभद्रे विबुधाः समस्ताः।
पादारविन्दे तव सादरं ते सौभाग्य सिद्ध्यै सततं नमन्तिं।।२२६।।

तब-तब अवतार धारण करके, हे देवी! आप विमानित किए हुए लोगों का उपकार तथा सनातन धर्म की स्थापना करती हैं।

हे मृगनयनि! शरत्कालीन चन्द्र के सदृश मुखवाली सुभद्रा दुर्गे! आपके चरण-कमलों को सारे देवता लोग सौभाग्य-सिद्धि के लिए सदैव नमस्कार करते हैं।

त्वमादि शक्तिः परमात्मनोअसि त्रैलोक्यधात्री वरदा भवानी।
शशांङ्कमौलेर्हृदयेश्वरीत्वं गौरी रमा नीलसरस्वती च।।२२७।।
दयामयी त्वं करुणामयी त्वं महेश्वरी त्वं निखलेश्वरी त्वम्।
संहारकर्त्री दनुसम्भवानां संरक्षिका धर्मपरायणानाम्।।२२८।।

देवी! आप परमात्मा की आदि शक्ति, त्रिलोकी की धात्री, वरदा, भवानी, शङ्कर हृदयेश्वरी गौरी, लक्ष्मी और नील सरस्वती हैं।

आप दयामयी करुणामयी, महेश्वरी, सर्वेश्वरी, दैत्यों का संहार करने वाली तथा धर्म-परायण लोगों की संरक्षिका हैं।

कान्तारमेतच्छुभमस्ति नूनं लब्धा त्वदीया प्रतिमा च यत्र।
अस्य प्रदेशस्य सदैव देवि! भवेत् सुभद्रं तव दिव्यदृष्टया।।२२९।।
लोके न मे कोऽपि सहायकोऽस्ति दुःखार्त्त नृणां शरणं त्वमेव।
तस्मात् सुभद्रे करुणामयित्वं संरक्ष मातः शरणागतं माम्।।२३०।।

हे देवी! यह वन निःसन्देह बड़ा ही शुभ है, जहां आपकी प्रतिमा प्राप्त हुई है। इस प्रदेश का आपकी दिव्य दृष्टि से सदैव कल्याण हो। संसार में मेरा कोई भी सहायक नहीं है। दुःख से पीड़ित लोगों की आप ही एक शरण हैं। इसलिए हे करुणामयी माँ! आप मुझ शरणागत की रक्षा करें।

राजाज्ञया ततो लोकैस्तस्मिन्नेव शुभे वने।
एकः प्ररचितो ग्रामः सत्वरं श्रीस्थलाभिधः।।२३१।।
तस्मिन् ग्रामे नृपालेन निर्मितं देवमन्दिरम्।
स्थापित्वा भवनेमूर्तिः शास्त्रोक्त विधिना तदा।।२३२।।

तदनन्तर राजा की आज्ञा से लोगों ने उसी शुभ वन में शीघ्र एक श्रीस्थल नाम का ग्राम रच दिया। तब राजा ने उस ग्राम में शास्त्रोक्त विधि से मूर्ति की स्थापना कर दी।

ईलावास[१] समारभ्याधराञ्जय[२] तटान्तकम्।
एतच्च काननं सर्वं देव्यै तेन समर्पितम्।।२३३।।

---

१. 'ईलावास' का अर्थ है भगवती के रहने का स्थान, 'ईला' भगवती का ही एक नाम है। ईलावास ग्राम जनवास ग्राम के ही निकट है, आजकल लोग इसे लावा नाम से याद करते हैं। ईलावास को संक्षिप्त बनाने के लिए इसके प्रथम अक्षर 'ई' और अन्तिम अक्षर 'स' को हटाकर, शेष लावा ही रहने दिया है।

२. धराञ्जय को आजकल लोग धरवञ्ज कहते हैं।

अस्मिन्वने स्थिता वृक्षाः पौष्टव्याः सकलैर्जनैः।
देव्या यज्ञं बिना नैव नरश्छिनत्तु कोऽपि तान्।।२३४।।
इत्याजज्ञौ महीपालः समेतानां च संसदि।
ततोऽपराणि कार्याणि कृतवान् स पराक्रमी।।२३५।।

ईलावास ग्राम से लेकर, धराञ्जय ग्राम के तट तक सारा वन राजा ने भगवती के लिए समर्पित किया और इकट्ठे हुए लोगों की सभा में उसने यह आज्ञा दी कि प्रत्येक व्यक्ति को इस वन में स्थित वृक्षों की रक्षा करनी चाहिए। देवी के यज्ञ-कार्य के बिना उनको कोई मनुष्य नहीं काटे। इसके अनन्तर उस पराक्रमी राजा ने कुछ अन्य कार्य किए।

तस्यामेव सभायान्तु हिताय यात्रिणां ततः।
रचिता बहवस्तेन नियमा भक्तिवर्धकाः।।२३६।।
स्नानेन कायशुद्धिस्यात्लयं गच्छति तन्द्रिका।
तस्मात् स्नानं बिना कोऽपि प्रविशतु न मन्दिरे।।२३७।।

फिर उसी सभा में यात्रियों के हित के लिए बहुत से भक्तिवर्धक नियम उसने बनाए। (१) स्नान से शरीर की शुद्धि और आलस्य का नाश होता है, इसलिए बिना स्नान के कोई भी मन्दिर में प्रवेश न करे।

अग्रालयाभिधाद् ग्रामात्छ्रीस्थलं नैव गच्छतु।
आरुह्य वाहन कोऽपि यात्री धर्मपरायणः।।२३८।।
नैवात्र मनुजः कोऽपि कुर्यादशिष्ट भाषण्।
नैव स्वपितु खट्वायां न च सुरादिकं पिबेत।।२३९।।

(२) अग्रालय ग्राम से श्रीस्थल में कोई व्यक्ति वाहन पर चढ़ कर न जाए।

(३) न असंभ्य भाषण करे, (४) न वहां खाट पर सोवे और (५) न मद्यादि मादक द्रव्यों का उपयोग करे।

यज्ञार्थ यानि वस्तूनि जनः कोऽप्यानयेदिह।
न नैवेद्यं बिना तेषां शेषभागं नयेद् गृहम्।।२४०।।

अन्नदानं महादानं सर्वदानेषु दुर्लभम्।
तस्मादत्रान्नदानेन नन्दयेत् नरो द्विजान्।।२४१।।

(६) कोई मनुष्ययज्ञ कार्य के लिए जिन वस्तओं को यहां लावे उनका अविशिष्ट भाग बिना नैवेद्य के कुछ भी घर को न ले जावे अपितु सारा अवशिष्ट भाग यहां पर ही दान कर दे।

(७) अन्नदान महादान होता है जो सब दानों में दुर्लभ है, इसलिए मनुष्य यहां अन्नदान द्वारा द्विज लोगों को संतुष्ट करें।

पूजनाय महादेव्यास्ततस्तेन नियोजिताः।
ब्राह्मणः सदगुनैर्युक्ता धार्मिकाः श्रुतिकोविदाः।।२४२।।

जलकुल्यास्ततो नृणां हिताय श्रम-जीविभिः।
अरण्यात् मन्दिर पर्यन्तं रचयामास भूपतिः।।२४३।।

महादेवी की पूजा करने के लिए धार्मिक, वेद के जानने वाले और अच्छे गुणों से युक्त ब्राह्मणों को नियुक्त किया।

इसके बाद वन से मन्दिर तक लोगों के हित के लिए श्रमजीवियों द्वारा राजा ने एक पानी की छोटी-सी कुल्ह बनवाई।

सन्धानाय च कुल्याया नियुक्ता तेन ये जनाः।
वंशोऽद्याप्यत्र तेषान्तु कुल्यवानेव कथ्यते।।२४४।।

कुल्ह की देख-भाल के लिए जो लोग उसने नियुक्त किए थे, उनका वंश आज भी कुल्यवान् नाम से ही याद किया जाता है।

वेदाक्ष्यद्रिभये वर्षे गते वैक्रम राज्यतः।
भाद्रपदे शुभे मासेऽमावस्यामारवासरे।।२४५।।
ईजे यज्ञं ततोभूपस्तत्र शास्त्रविधानतः।
ददौ भोज्यं समेतेभ्यो हर्षपूरितमानसः।।२४६।।

वैक्रम संवत् १७२४ भाद्र मास की अमावस्या तिथि, मंगलवार के दिन राजा ने शास्त्र-विधि से एक यज्ञ किया और हर्ष से युक्त मन से एकत्रित हुए लोगों को भोज्य दिया।

तस्माद्दिनात्समारभ्याद्य यावच्छ्रीस्थले जनैः।
तत्रानुष्ठीयते सम्यक मघामाया महोत्सवः।।२४७।।
तत्रत्या वासिनः सर्वे तस्मिन्महोत्सवे मुदा।
ददात्यद्यापि लोकेभ्यो भोज्यं सुव्यञ्जनैर्युतम्।।२४८।।

उस दिन से लेकर आज तक श्रीस्थल के लोग मघा नक्षत्रीय अमावस्या के दिन ठीक ढंग से एक उत्सव मनाते हैं, जिसमें वहां के निवासी प्रसन्नता से लोगों को बहुत प्रकार के व्यञ्जनों से युक्त भोजन देते हैं।

विधायोक्तानि कार्याणि महासिंहो नराधिपः।
प्रत्याजगाम धर्मात्मा स्वकीयं नगर प्रति।।२४९।।

उक्त कार्यों को पूरा करके, धर्मात्मा राजा महासिंह अपने नगर को लौट आया।

ततः प्राप्ते शुभे काले राजा धर्मपरायणः।
समर्प्य राज्यसम्भारं ज्येष्ठपुत्राय धीमते।।२५०।।

जहसिंहाय वीराय प्रजायाश्च हितेच्छया।
पालयन्तार्य धर्म स वानप्रस्थाश्रमं ययौ।।२५१।।

तदनन्तर एक शुभ समय आने पर धर्म-परायण वह राजा अपने ज्येष्ठ पुत्र बुद्धिमान् जयसिंह को प्रजा की भलाई की इच्छा से राज्य का सम्भार समर्पण करके, स्वयं आर्य-धर्म की मर्यादा को पालते हुए, वानप्रस्थ आश्रम में चला गया।

प्रतिवर्ष स धर्मात्मा ग्रीष्मकाले शुभे दिन।
यज्ञमीजे विधानेन श्रीस्थले दिव्यमन्दिरे।।२५२।।
तस्मिन्यज्ञे महाभोज्यं नाना व्यञ्जनसंयुत्तम्।
सर्वेभ्यः समवेतेभ्यः प्रददौ श्रद्धया सह।।२५३।।

वह धर्मात्मा राजा प्रति वर्ष ग्रीष्मकाल में किसी मुहुर्त पर श्रीस्थल के दिव्य मन्दिर में शास्त्र विधि से यज्ञ किया करता था, उस यज्ञ में अनेक खाद्य-पदार्थों से युक्त महाभोज्य सारे इकट्ठे हुए लोगों को प्रदान करता था, श्रद्धा के साथ।

तस्मिन्दिवंगते भूपे तस्य वंशसमुद्भवाः।
सर्वेऽपि च महीपाला भवान्या भव्यमन्दिरे।।२५४।।
यज्ञमीज्युर्विधानेन प्रतिवर्षं यथाक्रमम्।
ददुर्भोज्यं यथापूर्वं लोकानां हितवांछया।।२५५।।

उस राजा के स्वर्गवास होने पर उसके वंश में उत्पन्न सारे राजा लोग यथाक्रम श्रीस्थल के भव्य मन्दिर में प्रति वर्ष यज्ञ करते थे और पूर्व रीति के अनुसार लोगों की भलाई की भावना से भोज्य दिया करते थे।

अधिकारोऽस्य देशस्य जम्बूपेन हृतो यदा।
तस्माद्दिनात्समारभ्य सर्वे तत्रस्थ भूमिपाः।।२५६।।
महाराजाधिराजस्य हरिसिंहस्य धीमतः।
शासनकालपर्यन्तं यज्ञमेकं त्रिवार्षिकम्।।२५७।।
अकार्षुः श्रीस्थले ग्रामे बहुसम्भारसंयुतम्।
प्रददुरुपदां देव्यै लोकेभ्योऽपि च भोजनम्।।२५८।।

जब इस प्रदेश का अधिकार जम्बू नरेश महाराज गुलाब सिंह के हाथ में आया, उस दिन से जम्बू के सारे नरेश बुद्धिमान महाराजाधिराज हरिसिंह महोदय के शासन काल तक श्रीस्थल ग्राम बहुत सामग्री से युक्त एक त्रिवार्षिक यज्ञ करते रहे, जिसमें जगदम्बा को भेंट और लोगों को भोजन देते थे।

द्रष्टुं तं पावनं यज्ञं बहवो मुस्लिमा अपि।
आगमन् श्रीस्थलं ग्रामं श्रद्धायुक्तेन चेतसा।।२५९।।
प्रसादं जगदम्बायाः पवित्रमति शोभनम्।
गृहीत्वा यात्रिणः सर्वेऽन्भवंस्ते परां मुदम्।।२६०।।

उस पवित्र यज्ञ को देखने के लिए बहुत से मुसलमान लोग भी श्रद्धायुक्त मन से श्रीस्थल ग्राम आते थे और सारे यात्री लोग महामाया के प्रसाद को ग्रहण करके, बड़ी प्रसन्नता को अनुभव करते थे।

किश्तवाड़ाधिनाथेन महासिंहेन यद्वनम्।
समर्पितम महादेव्यै चण्डिकायै च सादरम।।२६१।।
अद्यापि तज्जनैः सर्वै-र्देवीलावनमुच्यते।
सर्वं हि तद्वनं देव्या निजकीयास्ति सम्पतिः।।२६२।।

किश्तवाड़ के नरेश महासिंह ने जो वन आदर के साथ महादेवी चण्डिका को समर्पित किया था, उसे आज भी लोग देवीला वन अथवा द्यलवन कहते हैं, वह सारा जंगल भगवती का अपनी जायदाद है।

इति पञ्चमः पटलः।

अथ तुलसीगिरेर्गुणगौरवम्

मुगलवंशभूतस्य हिन्दूधर्मस्य घातिनः।
भूपस्यौरङ्गज़ेबस्य राज्यकाले भयास्पदे।।२६३।।
किश्तवाड़े तदाचासीत् कीर्तिसिंहोऽत्र शासकः।
तस्य सर्वे प्रजालोका देशभक्तिसमन्विताः।।२६४।।
धीराः समरवीराश्च ते मन्यन्तेस्म सर्वदा।
स्वातन्त्र्यं निजदेशस्य प्राणैरप्यधिकं प्रियम्।।२६५।।

मुग़ल वंश में उत्पन्न हिन्दू-धर्म के विनाशक, बादशाह औरंगज़ेब के भयानक राज्य-काल में, तब यहां किश्तवाड़ में राजा कीर्तिसिंह शासक था। उसकी प्रजा के लोग देश-भक्ति से युक्त, धैर्यवान् और युद्धवीर थे। अपने देश की स्वतन्त्रता को वे अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय मानते थे।

तेषां सुमनसां मध्ये महासिंहस्य पुत्रकः।
रामसिंहो बभूवैको दुःखदः कुलकण्टकः।।२६६।।
राज्यलोभी दुराचारः स्वार्थसिद्धिरतश्च सः।
राज्यं श्रीकीर्तिसिंहस्य येते हर्तुमनारतम्।।२६७।।
भौतिक सुखलाभाय तेन च स्वीकृतं मुदा।
मतं मुसलमानानां विहाय धर्मसनातनम्।।२६८।।

उन सुमनों के बीच में महासिंह का छोटा पुत्र रामसिंह एक दुःखद, कुल-कण्टक था, वह राज्य का लोभी, अनाचारी और स्वार्थसिद्धि में रत रहने वाला, राजा कीर्तिसिंह के राज्य को हरने के लिए सतत प्रयत्नशील

था। संसारिक सुखों के लाभ के लिए उसने सनातन धर्म को त्याग कर, मुसलमानों के धर्म को भी प्रसन्नता से स्वीकार कर लिया था।

निवासी बगदादस्य कुरानस्य प्रचारकः।
एकस्तदाऽऽययावत्र सयीदः सहसङ्गिभिः।।२६९।।
श्रीफरीदुलदीनस्य तस्य पीरस्य धीमतः।
देशेऽस्मिन्, रामसिंहः स शिष्यो बभूव चादिमः।।२७०।।

उन दिनों बगदाद देश का निवासी, कुरान का प्रचारक एक पीर कुछ साथियों के साथ यहां किशतवाड़ में आया हुआ था, उस बुद्धिमान पीर फरीदुल दीन का इस देश में रामसिंह पहला शिष्य बना।

सम्राडौराङ्गजेबस्तु भ्रातृवर्गस्य दूषकः।
यदा परिजनैः साकं कश्मीरप्रान्तमाययौ।।२७१।।
तस्मिनेव दुष्काले परधर्मानुयायिना।
रामसिंहेन दुष्टेन पत्रमेकं सुविस्तृतम्।।२७२।।
तस्मै मुग़लसम्राजे गुप्तरूपेण प्रेषितम्।
पत्रे विलिखितं तेन कीर्तिसिंहोऽस्ति दुर्जनः।।२७३।।
नव मुसलमानान्स भर्त्सयते निरन्तरम्।
अतस्तेषां सुरक्षायै तं ताडय जनेश्वर।।२७४।।

भ्रातृ वर्ग का अहित करने वाला बादशाह औरङ्गजेब जब अपने परिजनों के साथ कश्मीर प्रान्त में आया, तो उस निकृष्ट समय पर धर्म के अनुयायी, दुष्ट रामसिंह ने एक विस्तृत पत्र गुप्तरूप से मुगल-सम्राट् को भेजा, पत्र में उसने लिखा कि कीर्तिसिंह दुर्जन है, वह नव मुसलमानों को निरन्तर सताता रहता है, अत: उनको रक्षा के लिए, हे बादशाह! उसको दण्ड दें।

स्वार्थिनो रामसिंहस्य हस्तेन लिखितं च तत्।
पत्रं प्रपठ्य सम्राट् स बभूव क्रोधसंयुतः।।२७५।।

स्वार्थी रामसिंह के हाथ से लिखे हुए, पत्र को पढ़कर, बादशाह औरङ्गजेब क्रोध से युक्त हो गया।

ततो विरच्य षड्यन्त्रमेकमतिविगर्हितम्।
सम्राजौरग्ङज़ेबेन हिन्दुधर्मस्य विद्विषा।।२७६।।
कश्मीरेषु समाहूय किश्तवाड़ाधिनायकम्।
शस्त्रबलेन वीरः स हिन्दु धर्माच्चपातितः।।२७७।।

तदन्तर एक बहुत गर्हित षड्यन्त्र रचकर, हिन्दू-धर्म के प्रबल शत्रु बादशाह औरङ्गजेब ने कश्मीर में किश्तवाड़ के नरेश कीर्तिसिंह को बुलाकर, उस वीर को शस्त्र के बल से हिन्दू-धर्म से गिरा दिया।

शिष्ट्या चौरग्ङज़ेबस्य काज़िना रचिता ततः।
सप्तधारा समायुक्ता तत्रैकाऽऽदेश-पत्रिका।।२७८।।

औरग्ङजेब की आज्ञा से वहां काज़ी ने सात धाराओं से युक्त एक आज्ञा-पत्र तैयार किया।

आदेशः प्रथमः पत्रे तेन विलिखितस्त्वयम्।
गोवधं मुस्लिमा कुर्युः किश्तवाड़े निशङ्कया।।२७९।।
प्रचाराया कुराणस्य सहायं स्याद्यथोचितम्।
तत्रत्या हिन्दुवोदद्युर्ज़ज़िया नामकं करम।।२८०।।
सर्वेषामभियोगानां काज़ी कुर्याच्च निर्णयम्।
काचिद् मुस्लिमबालातु न हिन्दोर्गृ हिणीभवेत्।।२८१।।

राज्यकार्येषु हिन्दूनां प्रभुत्वं स्यान्नचाधिकम्।
मुख्यमन्त्री च सेनानी मुस्लिमौ भवतां सदा।।२८२।।

उस आज्ञा-पत्र में काज़ी ने यह प्रथम आदेश लिखा, कि —

(१) मुसलमान लोग किश्तवाड़ में किसी शंङ्का से गोवध करें।

(२) कुरान के प्रचार के लिए यथोचित सहायता हो।

(३) हिन्दू लोग जाज़िया नाम का टैक्स देवें।

(४) सारे अभियोगों का निर्णय काज़ी करे।

(५) कोई भी मुस्लिम-कन्या हिन्दू की घरवाली न बने।

(६) राज्य-कार्यों में हिन्दुओं का प्रभुत्व अधिक न हो।

(७) मुख्यमन्त्री एवं सेनापति सदैव मुसलमान ही हों।

इत्थं विलिख्य तत्पत्रं शिष्टया काजिनस्ततः।
भीतेन कीर्तिसिंहेन कृतं पत्रे कराक्षरम।।२८३।।

इस प्रकार उस आदेश-पत्र को लिखकर फिर काज़ी की आज्ञा से भयभीत कीर्तिसिंह ने उस पत्र पर हस्ताक्षर कर दिया।

अस्य छलस्य विज्ञिप्तिं संप्राप्य सकला प्रजा।
भूपतेः कीर्तिसिंहस्य बभूव क्रोध-संयुता।।२८४।।

इस छल की सूचना पाकर, राजा कीर्तिसिंह की सारी प्रजा क्रोध युक्त हो गई।

आकर्ण्य यवनानां तत् पापकार्यं भयास्पदम्।
सततं ध्यानसंमग्नश्चण्डिकाया उपासकः।।२८५।।

योगी त्यागी च धर्मात्मा संन्यासी तुलसीगिरीः।
बभूव सहसा क्रुद्धो धैर्यवान् सिंहविक्रमः।।२८६।।

मुगलों के भयास्पद उस पाप कार्य को सुनकर, सतत ध्यान-मग्न रहने वाला, भगवती चण्डिका का उपासक, योगी, त्यागी, धर्मात्मा, धैर्यवान् एवं सिंह-विक्रम वाला तुलसीगिरी क्रोधित हो गया।

चित्ते स्मरन् सहामायां दण्डं धृत्वा स्वके करे।
रौद्राक्षनागराजस्य मन्दिराद् बहिराययौ।।२८७।।
मुग़लानां कुकृत्यं तत् कुत्सयञ्च गृहे-गृहे।
क्रान्त्यनलं प्रदेशेऽत्र दुदाव स समन्ततात्।।२८८।।

मन में भगवती को स्मरण करते हुए, दण्ड को हाथ में धरकर, वह रौद्राक्ष नाम के मन्दिर से बाहर आ गया, मुग़लों के उस कुकृत्य की निन्दा करते हुए, उसने इस प्रदेश में क्रान्ति की आग चारों ओर प्रज्ज्वलित कर दी।

दुष्टानां वचनं सन्धा सहानुभूतिरानतिः।
विनाशमेव कुर्वन्ति नोपकारं कथञ्चन।।२८९।।
इत्युवाच स पुण्यात्मा सर्वत्र लोकसंसदि।
मनोबलं दृढं तेन कृतं नृणां सुशिक्षया।।२९०।।

दुष्टों के वचन, सहानुभूति और सत्कार ये सब विनाश ही करते हैं। उपकार तो किसी प्रकार भी नहीं। वह पुण्यात्मा यह बात लोगों के समाज सर्वत्र कहता था और उत्तम शिक्षा द्वारा उसने मनुष्यों के मनोबल को सुदृढ़ किया।

सच्चिरित्रं महादेव्या श्रावयन् सकलान् जनान्।
दुष्टैर्विरचितं जालं भेत्तुं येते यतिश्च सः।।२९१।।

भगवती चण्डिका के पवित्र चरित को सारे लोगों को सुनाता हुआ, दुष्टों द्वारा रचे हुए जाल को तोड़ने के लिए उस संन्यासी ने यत्न किया।

एवं प्रेरणया तस्य जगुशानो महाबली।
श्रीलालः परिहारश्च लोकसंघस्य नायकौ।।२९२।।
रक्षाणायार्यधर्मस्य विनाशाय च पापिनाम्।
सत्वरमेव तौ वीरौ कर्मक्षेत्रे च तस्थुतः।।२९३।।

उस महात्मा की प्रेरणा से महाबली जगुशान और श्रीलाल परिहार दोनों लोक संघ के नेता आर्य धर्म की रक्षा तथा पापियों के नाश करने के लिए कर्म-क्षेत्र में स्थित हो गए।

आदेशेन तयोः शीघ्रं सकलश्च प्रजागणः।
आयुधं स्वकरे धृत्वा समराङ्गणमाययौ।।२९४।।
युयुत्सु स नृसन्दोहः पपात देश-घातके।
रामसिंहे दुराचारे तूलराशाविवानलः।।२९५।।
एवं विहत्य तं दुष्टमन्यानपि ततः परम्।
देशभक्ता जनाः शीघ्रं विविधुर्देशाघातकान्।।२९६।।
इत्थं समाप्य तत्कार्यं युद्धाय कृतनिश्चयः।
गिरिशृङ्गेषु संतस्थुरत्रत्याः सकला जनाः।।२९७।।

उन नेताओं की आज्ञा से शीघ्र ही प्रजा का सारा समुदाय हाथ में शस्त्र धारण करके, समरांगण में आ गया। युद्ध की इच्छा वाला वह मनुष्यों का समूह देश-घातक, दुराचारी रामसिंह पर इस प्रकार टूट पड़ा, जैसे कपास के ढेर पर आग। इस रीति से उस दुष्ट रामसिंह को मारकर, फिर

देश-भक्त लोगों ने देश को हानि पहुंचाने वाले अन्य लोगों को भी मार दिया। इस प्रकार यह कार्य समाप्त करके, युद्ध के लिए निश्चय किए हुए, वे सारे लोग पर्वतों की चोटियों पर स्थित हो गए।

विद्रोह शमनार्थं या मुग़लानां वरूथिनी।
अत्रागता महाघोरा साऽपि च सत्वं सदा।।२९८।।
शरै क्रपाणिकाभिश्च त्रिशूलैमुद्गरैस्तथा।
अश्मभिर्वृक्षखण्डैश्च हता तैर्वीरपुङ्गवैः।।२९९।।
विद्रोहस्य गतिंम चण्डां दृष्टवावशिष्टसैनिकाः।
पलायाञ्चक्रिरे युद्धात् त्यक्त्वा शवांश्च सङ्गिनाम्।।३००।।

विद्रोह को शान्त करने के लिए जो मुग़लों की भयानक सेना यहां आई, तब उसको भी शीघ्र ही उन उत्तम वीरों ने तीरों, कृपाणों, त्रिशूलों, मुद्गरों, पत्थरों और लकड़ियों के टुकड़ों से मार दिया। विद्रोह की भयानक गति को देखकर, शेष सैनिक अपने साथियों के शवों को त्यागकर युद्ध से भाग गए।

तेषु गतेषु सा भूमिः संजाता सहसैव च।
भोगभूमिः शृगालानां चिल्लानां च सुखस्थली।।३०१।।
उल्लङ्घ्य तुङ्गशैलं द्राक् जगुः शानो महाबली।
कश्मीरं स ययौ वीरः युद्धाय सह सङ्गिभि।।३०२।।
तत्र जघान वीरोऽसौ हिन्दूनां प्रचुरान् द्विषः।
दग्ध्वा तेषां गृहादीनि प्रत्याययौ स्वकं पुरम्।।३०३।।

उन सैनिकों के भाग जाने पर वह युद्ध-भूमि सहसा ही गीदड़ों की भोग-भूमि और चीलों के सुख का स्थान बन गई। महाबली जगुशान अपने साथियों के साथ ऊंचे पर्वत को पार करके, युद्ध करने के लिए कश्मीर को चला गया, वहां उसने हिन्दुओं के बहुत से शत्रुओं को मारा तथा उनके घर आदि को जलाकर अपने नगर को लौट आया।

एतच्छौर्यं समालोक्य किश्तवाड़ निवासिनाम्।
बभूव दुःखसंतप्तस्तत्रस्थितश्छ शासकः।।३०४।।
मरणमारणाभ्यां ये सततं सन्ति तत्पराः।
तैः सह समरान्नूनं लाभो जायेत कोऽपि न।।३०५।।
इति चिन्तयमानः स कश्मीरशासकस्तदा।
विहाय दण्डनितिं द्राक् चक्रे कार्यं यथोचितम।।३०६।।

किश्तवाड़ निवासियों के इस शौर्य को देखकर, कश्मीर का सूबेदार बहुत दुखी हुआ। जो लोग मरने-मारने के लिए सतत तत्पर हैं, उनके साथ युद्ध करने से निःसन्देह कोई लाभ नहीं है, इस बात को विचारते हुए, तब उस शासक ने दण्डनीति को शीघ्र त्याग कर, यथोचित कार्य किया।

स्थापितुं मित्रतामत्र लोकैः सह निश्चलाम्।
प्रेषयामास दूतं स जयसिंह नृपं प्रति।।३०७।।
दूतः सोऽत्र समागत्य जयसिंहस्य सन्निधौ।
इदं हर्षप्रदं वाक्यं कथयामास सादरम्।।३०८।।

यहां के लोगों के साथ स्थिर मित्रता स्थापित करने के लिए, उसने एक दूत राजा जयसिंह की ओर भेजा। उस दूत ने यहां किश्तवाड़ में राजा जयसिंह के पास आकर, आदर के साथ यह सुखप्रद बात कही।

दूत उवाच

कश्मीर शासकों धीमान् भवतः प्रजया सह।
कर्तुमिच्छति मित्रत्वं पूर्ववत् धरणीश्वर।।३०९।।
संस्कृत्यामस्य देशस्य हस्तक्षेपो न कोऽपि स्यात्।
लिखितं कीर्तिसिंहेन सन्धिपत्रं तदा च यत्।।३१०।।
स्वकीयेनाधिकारेण तल्लोपस्यति स शासकः।
द्रागेव कीर्तिसिंहोऽपि स्वगृहमागमिष्यति।।३११।।

एनमादाय सन्देशं तस्य मुख्याधिकारिणः।
आगच्छं भवतः पार्श्वे दूतोऽहं नरनायक।।३१२।।
अतो जनपदेऽस्मिन् व्याप्तां क्रान्तिं समन्ततात्।
शामयतु भवाञ्छीघ्रं मानवानां हिताय च।।३१३।।

दूत ने कहा, हे महाराज! कश्मीर का बुद्धिमान शासक पहले की तरह आपकी प्रजा के साथ मित्रता करने की इच्छा रखता है। इस राज्य की संस्कृति में कोई हस्ताक्षेप नहीं हो, कीर्तिसिंह ने जो सन्धि-पत्र तब लिखा है, उस को भी वह बुद्धिमान हाकिम अपने अधिकार से रद्दकर देगा। राजा कीर्तिसिंह भी शीघ्र अपने घर को आ जाएगा। हे राजन्! उस हाकिम के इस सन्देश को लेकर, मैं दूत आपके पास आया हूँ, इसलिए मनुष्यों की भलाई के लिए, इस राज्य में चारों ओर फैली हुई क्रान्ति को शीघ्र शान्त करवाइए।

आकर्ण्य तस्य दूतस्य वाक्यं स स्थविरो नृपः।
आश्रमादाययौ तत्र यत्रासीत् तुलसीगिरिः।।३१४।।
प्रणम्य तं गुरुं राजा श्रद्धाभक्ति समन्वितः।
कथयामास तत्सर्वं वाचिकं दूतवर्णितम्।।३१५।।

वह वृद्ध राजा उस दूत के वाक्य को सुनगर, अपने आश्रम से वहां आया जहां महात्मा तुलसीगिरी थे। श्रद्धा-भक्ति से युक्त राजा ने उस गुरु को नमस्कार करके, दूत द्वारा वर्णित सारे सन्देश को कह दिया।

निशम्य कर्मयोगी तत् बभूव हर्षसंयुतः।
आहूतास्तत्क्षणं तेन मुख्या विद्रोहसंसदः।।३१६।।
तेष्वागतेषु वीरेषु तेभ्यः सम्यक् निवेदितः।
कश्मीर-प्रान्त-मुख्यस्य सन्देशस्तेन योगिना।।३१७।।
ततस्तस्य यतेर्यत्नैः कीर्तिसिंहोऽत्र चागतः।
देशव्यापी स विद्रोहः शीघ्रमेव शमं ययौ।।३१८।।

उस बात को सुनकर वह कर्मयोगी प्रसन्न हो गया। उसने तत्काल

क्रान्ति चलाने वाले संघ के सारे नेताओं को बुला भेजा। उन वीर लोगों के आने पर कश्मीर के शासक का सन्देश ठीक ढंग से उन्हें निवेदन कर दिया।

फिर उस सन्यासी के प्रयत्नों से कीर्तिसिंह यहाँ किश्तवाड़ में आ गया और वह देशव्यापी क्रान्ति भी शीघ्र ही शान्त हो गई।

आगत्य कीर्तिसिंहोऽत्र श्रीनगरात् स्वकं गृहम्।
कथयामास तत्सर्वं जाल्मानां स दुष्कृतम्।।३१९।।

त्रासीनान् प्रजालोकान् दुःखसंतप्तमानसान्।
दर्शयामास गात्रं स्वं कशाघातैर्विचिन्हितम्।।३२०।।
दुःखं यद्बन्दिशालायां भुक्तं तेन सुविस्तृतम्।
तत्सर्वमपि तत्रैव कथितं लोकसंसदि।।३२१।।

श्रीनगर से यहां अपने घर में आकर, कीर्तिसिंह ने वह सारा दुष्कृत्य दुष्टों को कह दिया और वहां ठहरे हुए, दुःखी लोगों को कोड़ों की मार से चिह्नित हुआ अपना शरीर भी दिखाया तथा जो क़ैदखाने में बड़ा भारी दुःख उसने भोगा था उसका वर्णन भी वहां लोगों के समाज में कर दिया।

पुनः स कथयामास वाष्पपूरितलोचनः।
दुर्जना मुग़लास्ते मां हठाद्धर्मादयातयन्।।३२२।।
अस्म्यहं मनसा हिन्दुर्विग्रहो मेऽस्ति मुस्लिमः।
तस्माद्विः प्रकुर्युर्मे कायशुद्धिं विधानतः।।३२३।।
ततस्तत्रस्थितैर्लोकैराहूताः शास्त्रकोविदाः।
धर्माचार्याश्च ते सर्वे समागत्य नृपालयम।।३२४।।

फिर आँखों में आँसू भरे हुए उस राजा ने कहा कि दुष्ट मुग़लों ने मुझे हठात् अपने धर्म से गिरा दिया है, मन से तो मैं हिन्दू हूँ किन्तु मेरा शरीर

मुसलमान बनाया गया है, इसलिए विद्वान् लोग शास्त्रविधि से मेरे शरीर की शुद्धि करें। तदनन्तर वहां ठहरे हुए लोगों ने शास्त्र के जानने वाले लोगों को बुलाया, उन सारे धर्माचार्यों ने राज-प्रासाद में आकर,

अप्राक्षुर्भूमिपालं तं प्रश्नाश्च विविधांस्ततः।
म्लेच्छानां दुर्वृत्तं तेनसर्वमेव निवेदितम्।।३२५।।
श्रुत्वा तस्य मुखात्सर्वं दुष्कृत्यमाततायिनाम्।
हा हन्त! तत्क्षणं प्रोक्तं तत्र तै रूढिवादिभिः।।३२६।।

निजेच्छया हठाद्वापि योऽभक्ष्यं कोऽपि भक्षयेत्।
स कदाऽपि न हिन्दुः स्यादितिशास्त्रेषु निर्णयः।।३२७।।

फिर विविध प्रकार के प्रश्न उस राजा से पूछे। राजा ने भी मुग़लों के सारे ही दुर्व्यवहार का वर्णन कर दिया। उसके मुख से आततायियों के दुष्कृत्य का वर्णन सुनकर, हाय! वहां उसी समय उन रूढ़िवादी लोगों ने कहा कि अपनी इच्छा से अथवा ज़बरदस्ती जो कोई अभक्ष्य वस्तु खाये, वह कदापि हिन्दू नहीं होवे, ऐसा शास्त्रों में निर्णय हुआ है।

अहो! तेषामबोधेन तस्य शुद्धिर्बभूव नो।
तस्मादस्य सुराज्यस्य मुख्यो बभूव मुस्लिमः।।३२८।।
तथाऽपि कीर्तिसिंहः स तस्य वंशोद्भवा अपि।
सर्वे ते मनसाऽभवन् हिन्दुधर्मस्य पोषकाः।।३२९।।
दुर्गाया अर्चनं नित्यं नृपहर्म्ये यथाक्रमम्।
पुरोहितस्य हस्तेन कारयन्तिस्म ते मुदा।।३३०।।

आह! उन धर्माचार्यों के अज्ञान से उस राजा की शुद्धि नहीं हुई, जिससे इस पवित्र राज्य का शासक एक मुसलमान हुआ, फिर भी वह राजा कीर्तिसिंह और उसके वंश में उत्पन्न सारे लोग मन से हिन्दू-धर्म के पोषक

थे। राजप्रासाद में वे लोग यथाक्रम प्रसन्नता से पुरोहित के हाथ से दुर्गा का पूजन नित्य करवाते थे।

श्रीस्थलाख्ये शुभेग्रामे भवान्या भव्यमन्दिरे।
प्रतिवर्ष महायज्ञं ते कुर्वन्तिस्म भक्तितः।।३३१।।
अस्मिन्यज्ञे महादेव्यै प्राभृतं वसनादिकम्।
धृत्वा शिरसि ते भूपा निन्युः शिवालयं प्रति।।३३२।।

श्रीस्थल के पवित्र ग्राम में भगवती के सुन्दर भवन में प्रतिवर्ष वे राजा लोग एक बड़ा यज्ञ भक्तिभाव से करते थे।

इस यज्ञ में भगवती के लिए भेंट वस्त्रादि को अपने शिर पर धारण करके वे भगवती शिवा के मन्दिर की ओर ले जाते थे।

धर्माचार्यैर्यदा प्रोक्तं नास्य शुद्धिभविष्यति।
श्रुत्वा तद्वचनं राजा बभूव दुःखसंयुतः।।३३३।।

जब धर्माचार्यों ने कहा कि इस राजा कीर्तिसिंह की शुद्धि न होगी तो इस बात को सुनकर वह परम दुःखी हो गया।

ततः स्वल्पे गते काले तुलसीगिरिणा तदा।
एकस्मिन् दिवसे भूपः समाहूतो निजाश्रमे।।३३४।।
लब्ध्वा निमन्त्रणं तस्य मन्त्रिभिः सह सत्वरम्।
आश्रममाययौ राजा तयेराज्ञा वशंवदः।।३३५।।
तत्र दृष्ट्वा सुखासीनं योगिनं शान्तमानसम्।
ननाम दण्डवद् भूमौ स राजा तं मुहुर्मुहुः।।३३६।।

तदनन्तर, थोड़ा समय व्यतीत होने पर, एक दिन राजा कीर्तिसिंह को महात्मा तुलसीगिरि ने अपने आश्रम में बुला भेजा। बुलावा पाकर संन्यासी की आज्ञा का वशवर्ती राजा अपने मन्त्रियों के साथ शीघ्र ही आश्रम में आ

गया, वहां सुख से बैठे हुए, शान्त मन वाले योगी को देखकर उसे भूमि पर दण्डवत् प्रणाम किया।

आशीर्वादेन संतोष्य संस्थाप्य च वरासने।
तं भूपं स महायोगी कथयामास सादरम्।।३३७।।
हे राजन् श्रृणु मद्वाक्यं यत्किंचन वदामि ते।
तदनुसरणं कृत्वा कुरु कार्यं यथोचितम्।।३३८।।
सदैव लौकिकं कार्यमद्य यावत कृतं मया।
अधुना कर्तुमिच्छामि किञ्चिदात्महिताय च।।३३९।।

सन्यासी ने राजा को एक श्रेष्ठ आसन पर बिठाकर, आशीर्वाद द्वारा प्रसन्न करके, आदर के साथ यह बात कही कि हे राजन्! मैं तुम को जो कुछ कहता हूँ, मेरी उस बात को सुनो, उसका अनुसरण करके, यथोचित कार्य करो। आज तक मैंने सदैव सांसारिक कार्य ही किया है। अब मैं अपनी भलाई के लिए भी कुछ करना चाहता हूँ।

अतोऽत्रैव महीपालः समाधिमेकमुत्तमम्।
मदर्थं रचयेथा द्राक् त्वमस्य सरसस्तटे।।३४०।।
स्थित्वा तस्मिन्महागर्ते करिष्यामि शिवार्चनम्।
अभ्यासं योगविद्याया निग्रहं मनसोऽपि च।।३४१।।

इसलिए, हे महीपाल! तुम यहां ही इस तालाब के किनारे पर मेरे लिए तुरन्त एक समाधि तैयार कराओ, उसमें स्थित होकर, मैं भगवती शिवा की अर्चना, योग-विद्या का अभ्यास और मन का निग्रह भी करूंगा।

श्रुत्वा तस्य यतेर्वाक्यं स भूपः प्रश्रयान्वितः।
प्रणिपत्य यतिं प्राह तव कार्यं भविष्यति।।३४२।।

ततः स यतिना ज्ञप्तस्तत्रतः सह सङ्गिभिः।
शीघ्रं प्रत्याययौ भूपः स्वकीयं राजमन्दिरम्।।३४३।।

उस सन्यासी की बात सुनकर, वह विनीत राजा सन्यासी को नमस्कार करके बोला कि आपका कार्य हो जायेगा। तत्पश्चात् सन्यासी की आज्ञा प्राप्त किया हुआ राजा वहां से राज-मन्दिर में साथियों के साथ तुरन्त लौट आया।

राजाज्ञया ततो लोकैः समाधिर्बहुसुन्दरः।
सरकोटाभिधेयस्य रचितः सरसस्तटे।।३४४।।

फिर राजा की आज्ञा से लोगों ने सरकोट नाम के तालाब के किनारे पर एक सुन्दर समाधि रच दी।

मुन्यक्ष्यद्रिशशाङ्केऽब्दे गते वैक्रमराज्यतः।
कार्तिकशुक्लपञ्चम्यां यामे च प्रथमे दिवा।।३४५।।
आश्रमतः स संन्यासी मनसि चिन्तयन् हरिम्।
आगत्य सरसस्तीरे सस्तौ पवित्रवारिणा।।३४६।।
ततः स आगतस्तत्र यत्रासीत् भूमिपः स्थितः।
उत्तस्थु सकला लोकाः समालोक्य च तं यतिम्।।३४७।।

वैक्रम संवत् १७२७ कार्तिक मास की शुक्ल पञ्चमी के दिन प्रथम प्रहर में उस सन्यासी ने मन में भगवान् का चिन्तन करते हुए, अपने आश्रम से तालाब के किनारे पर आकर, पवित्र जल से स्नान किया और फिर वहां से वह उस स्थान पर आ गया जहां राजा कीर्तिसिंह विराजमान था। सन्यासी को देखकर, वहां ठहरे हुए सारे लोग खड़े हो गए।

ननाम श्रद्धया साकं प्रजया सह तं नृपः।
स आशीर्वचनैर्योगी नन्दयामास ताञ्जनान्।।३४८।।

धर्मज्ञः स इदं वाक्यं ततः प्रोवाच सत्वरम्।
हे शक्तिशालिनो लोकाः श्रृणुत वचनं मम।।३४९।।
आज्ञया जगदीश्वर्याः परित्ज्य क़लेवरम्।
शीघ्रमहं गमिष्यामि लोकमेकं मनोहरम्।।३५०।।

प्रजा के साथ राजा ने श्रद्धा द्वारा उस योगी को नमस्कार किया और उस महात्मा ने अपने आशीर्वादों से सब लोगों को आनन्दित किया, तदनन्तर उस धर्मज्ञ ने तुरन्त यह वाक्य कहा कि हे शक्तिशाली लोगों! मेरी बात को सुनो, मैं भगवती की आज्ञा से शरीर को त्याग कर, शीघ्र एक मनोहर लोक में चला जाऊंगा।

अतः प्रेतावटे युयं संस्थापयत मे तनुः।
इत्युत्त्वा स महायोगी तूष्णीं बभूव तत्क्षणम्।।३५१।।

आकर्ण्य तस्य तद्वाक्यं भूपालो विस्मयान्वितः।
प्रणामितोत्तमाग्ङः स वाक्यमेतदभाषत।।२५२।।
भोः स्वामिन् तव कर्त्तव्यं ज्ञातुं शक्नोति कोऽपि न।
आश्चर्यचकिताः सन्ति श्रुत्वा ते वचनं जनाः।।३५३।।

अतः आप लोग मेरे शरीर को समाधि में स्थापित करें, यह बात कहकर वह महायोगी तत्क्षण चुप हो गया। सिर को झुकाए हुए, विस्मय से युक्त राजा ने उसकी बात को सुनकर, यह वाक्य कहा, हे स्वामी! आपके कर्त्तव्य को जानने की कोई भी व्यक्ति शक्ति नहीं रख सकता है, सारे लोग आपकी बात को सुनकर, आश्चर्यचकित हो गए हैं।

ततो बद्धाञ्जलिर्भूपः बह्वाश्चर्यसमन्वितः।
प्रोवाच वांछित वाक्यं प्रणम्य तं मुहुर्मुहुः।।३५४।।

यदि ते रोचते स्वामिन् तर्हि निज मुखाद् यते।
देहि धर्मोपदेशं त्वमस्माकं मंगलाय च।।३५५।।
येन सदुपदेशेन ह्यत्रत्याः सकला जनाः।
मुञ्चेयुर्न स्वकर्तव्यं महाप्रलोभनादपि।।३५६।।

तदनन्तर हाथ जोड़े हुए, अति विस्मित राजा ने उस योगी को बार-बार नमस्कार करके, यह अभीष्य वाक्य कहा— हे स्वामी! यदि आपको पसन्द है, तो हे यति! आप हमारे कल्याण के लिए कोई धर्मोपदेश दें, जिस सदुपदेश द्वारा यहां के सारे लोग किसी भारी प्रलोभन से भी अपने कर्त्तव्य को कभी न त्यागें।

ततो यतिः स पुण्यात्मा वचनमिदमब्रवीत्।
नृपतेऽवहितोभूत्वा श्रृणु तद्यद्वदामि ते।।३५७।।
हा हन्त! संमृतावस्यां सारं नैवास्ति किंचन।
सर्वत्र विद्यतेत्वत्र दुःखस्यैव च शासनम्।।३५८।।

निवृत्यै कष्टसंघस्य ह्येकमेवास्ति साधनम्।
शरणं जगदीशस्य तस्यैव च समर्चनम्।।३५९।।
सर्वभूतेष्वसौनित्यं व्यापकोऽस्ति समन्तात्।
विचित्रं तस्य रूपं तु प्राणिष्वेव प्रदृश्यते।।३६०।।

इसके बाद वह पुण्यात्मा सन्यासी यह वचन बोला कि हे राजन! सावधान होकर, जो मैं तुमको कहता हूँ उसको सुनो। हाय! इस नश्वर संसार में कोई वस्तु सार नहीं है, यहां तो सब और दुःख का ही शासन है, इस कष्ट-समूह की निवृत्ति के लिए भगवान् की अर्चना और शरण है। भगवान् सब ओर सदैव समस्त भूतों में व्यापक है, उसके विचित्र रूप का दर्शन प्राणियों में ही मिलता है।

प्रकर्तुं प्राणिनां सेवां यो भवति समुद्यतः।
स एव वस्तुतः सम्यक् करोति ब्रह्मणोऽर्चनम्।।३६१।।
अतः सुखार्थिनो लोकाः प्रमुदे परमात्मनः।
सद्भावेन प्रकुर्वीरन् लोकसेवां निरन्तरम्।।३६२।।

जो प्राणियों की सेवा करने के लिए सम्यक् प्रकार से तत्पर रहता है, वास्तव में वही परमात्मा की समुचित पूजा करता है। इसलिए सुख चाहने वाले सारे लोग परमात्मा की प्रसन्नता के लिए सदैव सद्भाव से लोक-सेवा करें।

सर्वदैव मनुष्याणां जीवने सुखसाधने।
मातृभूमेः कृपा नूनं सर्वोपर्यत्र विद्यते।।३६३।।
अतः कृतविदो मर्त्याः सततं शुद्धचेतसा।
मातृभूम्या हितं कुर्युः प्राणैरपि धनैरपि।।३६४।।

इस संसार में मनुष्य के जीवन और सुख-साधन में मातृ-भूमि की कृपा सर्वोपरि है, 'इसलिए कृतज्ञ मनुष्य निरन्तर शुद्ध चित्त से प्राणों द्वारा भी और धन द्वारा भी मातृ-भूमि का हितकार करें।

मातृभूमेर्हितं कुर्यात् हितं तस्या विचारयेत्।
रतस्तस्या हिते यः स्यात् स एव श्रेष्ठमानवः।।३६५।।
तस्मात् सर्वे जना अत्र स्वार्थं विहाय चात्मनः।
मातृभूमेः प्रकुर्वन्तु धीरभावेन रक्षणम्।।३६६।।
देश-भक्ता नरा एवं पूजार्हा सन्ति सर्वथा।
लभन्ते तेऽत्र सम्मानं परलोके च सद्गतिम्।।३६७।।

जो मातृ-भूमि का हित करे, उसके हित को विचारे और उसके हितकार में तत्पर रहे, वही मानवों में श्रेष्ठ मानव है, अतः संसार में सारे मनुष्य अपने स्वार्थ को छोड़कर, धीरभाव से मातृ-भूमि की रक्षा करें।

देशभक्त लोग ही सब प्रकार से पूजा के योग्य हैं, वे इस लोक में सम्मान और परलोक में सद्गति प्राप्त करते हैं।

तथा च सा जगन्माता चण्डी सर्वार्थदायिका।
अर्चितव्या प्रयत्नेन मानवैः कार्यसिद्धये।।३६८।।
विराजतेऽत्र सङ्ग्रामे स्वयं सर्वेश्वरी शिवा।
श्रद्धावद्भ्यश्च भक्तेभ्यो या ददातीप्सितं सुखम।।३६९।।
तस्याः स्मरणमात्रेण सुखी भवति मानवः।
लभते विजयं लोकेऽसाध्यं साधयते ध्रुवम्।।३७०।।

तथा सर्वार्थदात्री भगवती चण्डी मनुष्यों द्वारा कार्य-सिद्धि के लिए प्रयत्न द्वारा पूजनी चाहिए। यहां पवित्र श्रीस्थल ग्राम में स्वयं सर्वेश्वरी शिवा विराजमान है और श्रद्धालु भक्तों को अभीष्ट सुख प्रदान करती है। मनुष्य उस महामाया के स्मरण मात्र से ही सुखी होता है, विजय प्राप्त करता है और निस्सन्देह असाध्य कार्य को भी साध लेता है।

अतो भक्तजनाः सर्वे पूजयन्तु महेश्वरीम्।
एतदेवास्ति संक्षिप्तमन्तिमं मे निवेदनम्।।३७१।।
यस्यकृते मया राजन् सदैव पूजिता शिवा।
कृपया जगदम्बायाः समयः स समागतः।।३७२।।
इत्युक्तत्वा स पवित्रात्मा ध्यानमगनः शिवां स्मरन्।
क्षणान्तरे स तत्रैव योगशक्तया दिवं गतः।।३७३।।

इसलिए सारे भक्तजन भगवती का पूजन करें। यही मेरा संक्षिप्त और अन्तिम निवेदन है। हे राजन्! जिसके लिए मैंने सदैव भगवती का पूजन किया, वह समंय जगदम्बा की कृपा से आ गया है। यह कहकर, वह ध्यानमग्न, पुण्यात्मा संन्यासी भगवती शिवा को स्मरण करते हुए, दूसरे ही क्षण, वहां पर ही योगशक्ति द्वारा स्वर्ग को चला गया।

योगिनो योगलीलां तां निरीक्ष्य सकला जनाः।
आश्चर्यचकितो भूत्वा प्रनेमुस्तं मुहुर्मुहुः।।३७४।।
स्तापयित्वा शवं तस्य योगिनः श्रद्धया सह।
ततस्तत्र स्थिता लोकैर्बहु सम्मानपूर्वकम।।३७५।।
संस्थापितं समाधौतच्छरीरं पावनात्मनः।
शिवार्चनं प्रकुर्वद्भिर्गर्तो मृदा प्रपूरितः।।३७६।।
इत्थं स परमोयोगी योगमाया प्रदर्शयन्।
स्वीयेच्छया गतः स्वर्ग प्रच्छिद्य भवबन्धनम्।।३७७।।

योगी की उस योगमाया को देख और आश्चर्य से चकित होकर, सारे लोग बार-बार उसे नमस्कार करते रहे, तत्पश्चात् योगी के शव को नहलाकर वहां ठहरे हुए लोगों ने बहुत सम्मानपूर्वक उस महात्मा के शरीर को समाधि में स्थापित किया और भगवती की अर्चना करते हुए लोगों ने समाधि का गर्त मिट्टी से भर दिया। इस प्रकार वह परमयोगी योगमाया को दिखाते हुए, अपनी इच्छा से संसार के बन्ध को काट कर, देवलोक को चला गया।

ततो महात्मनस्तस्यादिमः शष्यो विचारवान्।
वैद्यनग्राम वास्तव्यः क्षात्रवंशसमुद्भवः।।३७८।।
बभूव मठाधीशो माधव तुलसीगिरिः।
सततं पूजयाञ्चक्रे तं समाधिं स सादरम्।।३७९।।
वंशक्रमागता सम्पद् तस्मिन्मठे च संस्थिता।
अद्यापि तस्य शिष्यस्य वंशजैर्हि प्रयुज्यते।।३८०।।
गौरीशिवाभिधेयस्य मन्दिरस्याजिरे स्थितः।
समाधिर्वर्ततेऽद्यापि श्री तुलसीगिरेरिति।।३८१।।

महात्मा के देहान्त के पश्चात् उसका पहला विचारवान्, वैद्यन ग्राम का रहने वाला, क्षात्रवंश में उत्पन्न माधव तुलसीगिरि मठाधीश बना, जो

निरन्तर आदर के साथ समाधि की पूजा करता था, उस मठ में स्थित जायदाद वंशक्रम से आज भी उस शिष्य के वंशज ही उपयोग में ला रहे हैं। गौरीशङ्कर नाम के मन्दिर के आङ्गन में आज भी उस महात्मा तुलसीगिरि की समाधि विद्यमान है।

श्रद्धया तं समाधिं यः पूजयेन्मानवः सदा।
स सर्वाल्लभते कामान् परे देवपुरं व्रजेत्।।३८२।।
दीर्घायुः सुखभोगी स्यात् धनधान्यसमृद्धिमान्।
दहे त्रृणं यथा वाह्निस्तथैव स रिपूञ्जयेत्।।३८३।।
तत्रस्थां मृतिकां नित्यं धारयेद् यः स्वमस्तके।
जितव्याधिर्भवेन्मर्त्यो लोकमान्यः प्रजायते।।३८४।।
सायंकालेऽत्र यो नित्यं कुर्यादारात्रिकं मुदा।
अपुत्रो लभते पुत्रं दरिद्रो धनवान् भवेत्।।३८५।।

जो मनुष्य उस समाधि की नित्य पूजा करे, वह सारी कामनाओं को प्राप्त करता है और अन्तकाल में देवलोक को जावे। दीर्घायु, सुखी और धनधान्य-सम्पन्न होवे, जिस प्रकार अग्नि घास को जलाती है वैसे ही वह भी शत्रुओं को जीते। जो मनुष्य वहां की मिट्टी को नित्य अपने सिर पर धारण करे, वह निरोग और लोगों का मान्य बने। जो सायंकाल में नित्य वहां आरती करे वह यदि अपुत्र हो तो पुत्रवान् और निर्धन हो तो धनवान् बने।

यो नरः मार्जयेन्नित्यं समाधिमति पावनम्।
सकलान् स जयेद्रोगान् मातङ्गानिव केसरी।।३८६।।
धेनुमूत्रेण साकं यस्तत्रस्थां मृतिकां मुदा।
रविवारे निजाङ्गेषु प्रलिम्पेच्च निशामुखे।।३८७।।

सकलाश्चर्मरोगाश्च पिशतकीलका अपि।
नश्यन्ति तस्य शीघ्रं हि कृपया तुलसीगिरेः।।३८८।।

जो मनुष्य नित्य पवित्र समाधि की मार्जन-क्रिया करे, वह सारे रोगों को इस प्रकार जीते, जैसे हाथियों को शेर जीतता है। गोमुत्र के साथ जो वहां की मिट्टी रविवार के दिन सायंकाल में अपने शरीर पर लगाए, उसके सारे चर्मरोग और मस्से महात्मा तुलसीगिरि की कृपा से शीघ्र ही दूर हो जाते हैं।

इति षष्ठः पटलः

अथ वीरलक्षपतेरद्भुतो विक्रमः

रसाद्र्यहिशशाङ्केऽब्दे गते वैक्रम राज्यतः।
अस्मिन्देशे तदा चासीत्तेगसिंहाभिधो नृपः।।३८९।।
तस्य प्रधानमन्त्र्यासील्लक्षपतिः पराक्रमी।
देवीभक्तः सदाचारी सर्वगुणैः समन्वितः।।३९०।।
श्रीजटु गुरुणा साकं लक्षपतिर्निरन्तरम्।
निष्कपटेन संयुक्तश्चक्रे देशस्य रक्षणम्।।३९१।।
यदा च तेगसिंहस्य जनकः स्वजनैर्हतः।
तदा स युवराजोऽपि जटुनैव प्ररक्षितः।।३९२।।
श्रीलक्षपतिना तस्य राज्यं सम्यक प्रपालितम्।
तावुभौ मन्त्रिणौ तस्य कार्याणि चक्रतुर्मुदा।।३९३।।

वैक्रम संवत् १८७६ में तब इस देश में तेगसिंह नाम का राजा था। उसका प्रधानमंत्री पराक्रमी लक्षपति था, जो देवी-भक्त, सदाचारी और सारे गुणों से युक्त था। वह जटुगुरु के साथ ईमानदारी से निरन्तर राज्य का संरक्षण करता था। जब तेगसिंह के बाप अनायतसिंह को अपने लोगों ने मारा तो तब वह युवराज भी जटुगुर ने ही बचाया और वज़ीर लक्षपति ने उसके राज्य का संरक्षण किया। वे दोनों ही मन्त्री उसके सारे कामों को प्रसन्नता से करते रहे।

युवा वयसि संप्राप्ते तेन भूपेन स्वेच्छया।
कश्मीरवासिनौ दुष्टौ शियामतानुयायिनौ।।३९४।।
स्वार्थिनौ च दयाहीनौ कुटिलौ चाटुवादिनौ।
अहमदो जमीलश्च नियुक्तौ द्वौ स्वपार्श्विकौ।।३९५।।

तयोश्च दुष्टसङ्गेन दुर्जनोऽभूत् स सत्वरम्।
तस्य विवेक शक्तिस्तु व्यसनैः प्रलयं गता।।३९६।।
अस्तीदं वचनं सत्यमुक्तं केन मनीषिणा।
विनाशसमयेनृणां भवत्यसंगता मतिः।।३९७।।
जमीलाहमदाभ्यांतु प्रतारितो निरन्तरम्।
स दुर्बुद्धिर्महीपालः शत्रुर्बभूव मन्त्रिणोः।।३९८।।

युवावस्था के प्राप्त होने पर उस राजा ने अपनी इच्छा से कश्मीर के रहने वाले, शिया मत के अनुयायी, स्वार्थी, दयाहीन, कुटिल और चापलूस अहमद और जमील नाम के दो अपने सहचर नियुक्त किए। उन दोनों के दुष्टसङ्ग से वह राजा शीघ्र दुर्जन बन गया। दुर्व्यसनों द्वारा उसकी विवेक-शक्ति सर्वथा नष्ट हो गई। किसी बुद्धिमान ने यह बात सत्य कही हैं कि विनाश काल में मनुष्यों की बुद्धि विपरीत हो जाती हैं। जमील और अहमद द्वारा लगातार प्रतारित किया हुआ, वह दुर्विचार वाला राजा मन्त्रियों का शत्रु बन गया।

वीरस्य रणधीरस्य लक्षपतेर्महात्मनः।
मारणाय नियुक्तोवै तेनैकश्च पठानकः।।३९९।।
यदा राजालयं मन्त्री राजकार्याय संययौ।
तर्हि तत्र पठानेन शिष्ट्या भूपस्य दुर्मतेः।।४००।।
तस्योपरि च सङ्गेन प्रहारस्त्वरितं कृतः।
एवं बहून् प्रहारान् स धैर्यवान रणकोविदः।।४०१।।
प्रसह्य सव्यबाहौ द्राक् पादाघातेन तं खलम्।
पातयामास भूमौ वै मुष्टिपातैरनाशयत्।।४०२।।

रणधीर, वीर, महात्मा लक्षपति के मारने के लिए उस दुष्ट राजा ने एक पठान को नियुक्त किया। एक समय जब किसी राज कार्य के लिए

मन्त्री राजा के महल में गया तो वहां दुर्बुद्धि राजा की आज्ञा से उस पठान ने सहसा मंत्री के ऊपर खड्ग द्वारा तेजी से प्रहार कर दिया और उस धैर्यवान, रणपण्डित मन्त्री ने अपनी बाई भुजा पर बहुत से प्रहारों को सहकर, पांव की ठोकर से उस दुष्ट पठान को भूमि पर गिरा दिया और मुक्कों की मार से सदा के लिए उसे मृत्यु की गोद में सुला दिया।

निनहत्य तं पठानं स प्रणम्य मनसा शिवाम्।
दुर्जनघातिनीं देवी भक्तानां भयनाशिनीम्।।४०३।।
छिन्नबाहुर्महाशूर स्मरन् भगवतीं शिवाम्।
आययौ तत्रतः शीघ्रं गृहं स सिंहविक्रमः।।४०४।।
वेष्टयित्वा क्षतं बाहोस्तत्र शुभ्रेण वाससा।
परिवारेण साकं द्राक ग्रामं ज्वालापुरं ययौ।।४०५।।
भोजवाहाभिधे प्रान्ते ग्रामे ज्वालापुरे च सः।
सर्वथा निर्भयो भूत्वा न्युवासात्र स्वके गृहे।।४०६।।

उस पठान को मारकर, मन से दुष्टों का नाश करने वाली और भक्तों का भय हरने वाली भगवती शिवा को प्रणाम करके, वह छिन्नबाहु, महाशूर और सिंह-विक्रम वाला भगवती को स्मरण करते हुए, वहां से शीघ्र घर में आ गया, वहां साफ वस्त्र से बाजू के घाव को बांध कर, कुटुम्ब के साथ तत्काल ज्वालापुर ग्राम में अपने घर पर वह निर्भय होकर बस गया।

ततोस्मिञ्छोभने प्रान्ते ह्येकस्मिन् पावने स्थले।
अचिरादेव गोलाया निर्मितं तेन मन्दिरम्।।४०७।।
प्रमोदाय जगन्मातुः सच्छास्त्रविधिना ततः।
स्थापिता मन्दिरे मूर्तिर्मन्त्रिवर्येण धीमता।।४०८।।

बुजगुरुर्महाविद्वान कर्मकाण्डी प्रियंवदः।
अस्यां देवी प्रतिष्ठायां बभूव स पुरोहितः।।४०९।।
द्रष्टुं तद्यज्ञकार्यन्तु बुद्धिदासो महामुनिः।
सहसाऽस्मिन् महायज्ञे यज्ञारम्भे समाययौ।।४१०।।
पुरोहितेन साकं स बुद्धिदासो कृपानिधिः।
पूजितः फलताम्बूलैः श्रीलक्षपतिना मुदा।।४११।।

फिर उस सुन्दर प्रान्त में ही बहुत जल्दी लक्षपति ने एक पवित्र स्थान पर गोला भगवती के मन्दिर की रचना की। जगदम्बा की प्रसन्नता के लिए शास्त्र-विधि से मन्दिर में उस बुद्धिमान् ने देवी की मूर्ति की स्थापना की। इस देवी की प्रतिष्ठा में कर्मकाण्डी, प्रियवादी, महाविद्वान् बुजगुरु आचार्य बना। यज्ञारम्भ काल में यज्ञ-कार्य को देखने के लिए सहसा महामुनि बुद्धिदास जी भी इस महासमारोह में आ गए। पुरोहित के साथ ही उस कृपानिधि, बुद्धिदासजी की भी लक्षपति ने फल-ताम्बूल द्वारा सहर्ष अर्चना की।

अकाण्डे सततः सिद्धो वाक्यमेतदभाषत।
मन्त्रिवर्य! सुपुण्यात्मन्! श्रृणु मे त्वमिदं वचः।।४१२।।
दुर्दैव- गुम्फितौ भूपस्तेगसिंहः स दुर्मति।
धर्माधर्मौ न जानाति संगदोषेण दुर्जनः।।४१३।।
तस्मात्तस्य विमूढस्य विनाशो द्राग् भविष्यति।
यतो दुष्टस्य पांप हि हन्ति तं पापकारिणम्।।४१४।।
त्वया कृता सदा भक्तिः शिवायाः श्रद्धया सह।
अतस्तुभ्यं जगन्माता दारयति शोभनं फलम्।।४१५।।
तव भाग्योदयः श्रीमन्! भविष्यति निरन्तरम्।
प्रसादाज्जगदम्बायास्त्वं सत्कीर्ति प्रलप्स्यसे।।४१६।।

तदनन्तर अकस्मात् वह सिद्ध महात्मा बुद्धिदास जी यह वाक्य

बोले— हे पुण्यात्मन्! मंत्रीवर्य! आप मेरी इस बात को सुनें, दुर्भाग्य-ग्रसित, कुबुद्धि, राजा तेगसिंह संगति के दोष से धर्म और अधर्म को नहीं जानता है, अतः उस मूर्ख का शीघ्र विनाश होगा क्योंकि दुष्ट का पाप ही उस पापी को मारता है। आपने सदैव श्रद्धा के साथ भगवती की भक्ति की है, इसलिए आपको जगत्माता शुभ फल प्रदान करेगी।

हे श्रीमान्! आपका भाग्योदय निरन्तर होता रहेगा, जगदम्बा की कृपा से आप सत्कीर्ति का लाभ प्राप्त करते रहेंगे।

धर्मपरायणो धीरो द्विगर्तस्य दिवाकरः।
अन्याय-तमसः शत्रुर्यो भासते चतुर्दिशम।।४१७।।
तस्य गुलाबसिंहस्य शासनं सुखवर्धकम्।
अस्मिन्देशे च सर्वत्र भविष्यति न संशयः।।४१८।।
तस्य महात्मनो राज्ये दुःखेभ्यो मुक्तिदायके।
कार्य-क्षमतया त्वं द्राक् वरिष्ठं लप्स्यसे पदम्।।४१९।।

धर्म-परायण, धैर्यवान्, अन्याय-अन्धकार का शत्रु, द्विगर्त प्रान्त का सूर्य जो चारों दिशाओं में चमक रहा है, उस महात्मा गुलाब सिंह का सुखमय राज्य निःसन्देह इस देश में सर्वत्र स्थित होगा और अपनी कार्यकुशलता से उस महात्मा के सुखदायक राज्य में आप तुरन्त श्रेष्ठ पद को प्राप्त करेंगे।

दुर्जनस्तेगसिंहो वै कस्मिंश्चित्समयेऽप्यसौ।
इङ्गितैर्दुश्चरित्राणां त्वां ग्रहीतुं यतिष्यते।।४२०।।
तस्माद् भद्रावकाशं त्वं गच्छ परिजनैः सह।
तत्रैव सुयशोलाभं पूर्णरुपेण लप्स्यसे।।४२१।।
इत्युक्तवा स महासिद्धः शिष्यैः सह तु सत्वरम्।
ग्रामं जंगलवाडाख्यं ययौ भगवतीं स्मरन्।।४२२।।
सिद्धादेशेन मन्त्री स कुटुम्बेन युतोऽत्र तः।
भद्राश्रमाभिधं प्रांतं जगाम तुष्टचेतसा।।४२३।।

यत्र मन्दिरमम्बाया रचितं तेन मन्त्रिणा।
अधापि ततस्थलं लोकैर्देवीगौलैव कथ्यते।।४२४।।

वह दुर्मद तेगसिंह दुराचारियों के इशारों से किसी भी समय आपको पकड़ने का प्रयत्न करेगा। इसलिए आप परिजनों के साथ भद्रवाह प्रान्त में चले जाएँ, वहां ही आप पूर्ण रूप से यश का लाभ प्राप्त करेंगे। यह बात कहकर, वह महासिद्ध शिष्यों के साथ तत्काल भगवती का स्मरण करता हुआ जंगलवाड़ को चला गया। उस सिद्ध महात्मा के आदेश से वह वज़ीर लक्षपति परिवार के साथ प्रसन्न मन से भद्रवाह में चला गया। जिस स्थल पर उसने गोला भगवती का मन्दिर बनाया था, उस स्थान को आज भी लोग देवी-गोल ही कहते हैं।

वेदाम्बरनखे वर्षे गते वैक्रमराज्यतः।
तस्मिन् भयानके काले गोलायाः रम्यमन्दिरम्।।४२५।।
रचितं मन्त्रिवर्येण लोकानां हितकारम्।
त्रोटितं दुर्जनैर्लोकैश्च मूर्त्यामहितं तदा।।४२६।।
देवीगोलाभिधेस्थाने पवित्रमति निर्मलम्।
एकं च विद्यते स्त्रोतं विचित्रं पापनाशकम्।।४२७।।
तास्मिन् तीर्थे नरः स्नात्वा देवान् पितृन च तर्पयेत्।
तर्हि स लभते सौख्यं पुण्यं च वांछितं फलम्।।४२८।।

संवत् २००४ विक्रमी के भयानक काल में वज़ीर लक्षपति द्वारा रचा हुआ गोला देवी का वह शान्तिदायक और सुन्दर मन्दिर मूर्ति के सहित ही दुष्ट लोगों ने तोड़ दिया। देवी गोल के स्थान पर एक पवित्र, निर्मल और पापनाशक जलस्त्रोत है, उस पवित्र तीर्थ में स्नान करके मनुष्य देवताओं और पित्रों का तर्पण करे तो वह सौख्य, पुण्य और मनोइच्छित फल को प्राप्त करता है।

अत्रतो योजनं दूरमेकस्मिञ्छखरे गिरेः।
गुहैका भूमिगर्भस्था वर्तते बहु विस्तृता।।४२९।।
तस्यास्तु द्वारदेशोऽस्ति संकुचितोऽति दुर्गमः।
तस्माद्धि प्रतिहाराद्वै हित्वा हस्तेषु दीपकान्।।४३०।।
नभ मासस्य राकायं गर्ते विशन्ति दर्शकाः।
तत्रस्थमद्भुतं दृश्यं दृष्टवा ते श्रद्धया सह।।४३१।।
नमन्ति तान् महेशस्य लिंगान् तुषारनिर्मितान्।
पूजयन्ति विधानेन सर्वे ते विविधैः स्तवैः।।४३२।।

देवीगोल से एक योजन दूर एक पर्वत के शिखर पर भूमि के भीतरी भाग में एक विस्तृत कन्दरा है, उसका द्वार प्रदेश बड़ा संकुचित और दुर्गम है, उसी द्वार से हाथों में प्रकाश लेकर, श्रावण मास की पूर्णमासी के दिन दर्शक लोग उस गर्त में प्रवेश करते हैं। वहां का अद्भुत दृश्य देखकर, वे सारे लोग महादेव के तुषार से निर्मित असंख्य लिंगों को विधि अनुसार पूजते और नमस्कार करते हैं।

तत्रैव पूर्वदिग्भागे प्रतिमा हिमनिर्मिता।
दृश्यते जगदम्बायाः सर्वसौभाग्यदायिका।।४३३।।
तामपि बहुसम्भारैः श्रद्धावन्तश्च मानवाः।
कार्यसिद्ध् यै समर्चन्ति नमन्ति च मुहुर्मुहुः।।४३४।।
ईदृशा कन्दरा रम्या विचित्रा भूमि गर्भगा।
विद्यते त्रिषुलोकेषु कुत्रापि नैव संस्थिता।।४३५।।
यो अत्र गिरिजया साकं शिवमर्चेत् तु सादरम्।
स नरः स्यान्महावीरः शत्रुजिद्विजयी सदा।।४३६।।
धनवांल्लोकमान्यश्च सदाचारी सुरूपवान्।
भवेच्छस्त गुणैर्युक्तः कृपया शक्तिशर्वयोः।।४३७।।

यत्रास्ति सा गुहा संस्था तत्रत्यैः सकलै र्जनैः।
तत्स्थानं पत्रनागेश इति नाम्नैव स्मर्यते।।४३८।।

वहीं पूर्व दिशा की ओर बर्फ से बनी हुई, सर्वसौभाग्यदात्री, भगवती की भी मूर्ति देखी जाती है, उसे लोग कार्य-सिद्धि के लिए बहुत से उपकरणों द्वारा सम्यक् प्रकार से पूजते और बार-बार नमस्कार करते हैं। इस प्रकार की सुन्दर, विचित्र और भूमि के भीतरी भाग में स्थित कन्दरा तीनों लोकों में कहीं भी विद्यमान नहीं है। यहां जो मनुष्य भगवती के साथ शङ्कर भगवान् की पूजा करे, वह महावीर, शत्रुजित्, विजयी, धनवान, लोगों का मान्य, सदाचारी और रूपवान् शङ्कर तथा शिवा की कृपा से होगा। वह कन्दरा जिस स्थान पर स्थित है उसे वहां के रहने वाले सारे लोग पत्रनागेश नाम से याद करते हैं।

अथ द्विगर्तप्रान्तस्य भाग्योदयः

अहोभाग्यमहोभाग्यं द्विगर्तप्रान्तवासिनाम्।
भूपो गुलाबसिंहो वै तेषां बभूव नायकः।।४३९।।
न्यायकारी विवेकी च धीरोऽखिलगुणान्वितः।
मान्यो राजाधिराजानां वीराणां च शिरोमणिः।।४४०।।
जनको रणवीरस्य रघुवंशस्य दिवाकरः।
गुणान्वेषी गुणाढ्यानां दीनानां च सुरद्रुमः।।४४१।।

यह द्विगर्त-प्रान्त के लोगों का अहोभाग्य था कि उनका नायक राजा गुलाबसिंह बना, जो न्यायकारी, विवेकी, धीर, सारे गुणों से युक्त, राजाधिराजों का मान्य, वीरों का शिरोमणि, रणवीर का पिता, रघुवंश का सूर्य, गुणियों के गुणों का अन्वेषक एवं दीनों का कल्प-वृक्ष था।

चर्चां चरमुखाच्छ्रुत्वा वीरतायाश्च लक्षपतेः।
कीर्तिमान् करुणासिन्धुर्हिन्दुराज्यस्य पोषकः।।४४२।।
वीरो गुलाबसिंहः स वीराणां परिपालकः।
आश्चर्यचकितो भूत्वा शशंस मन्त्रिणो बलम्।।४४३।।
ततः स कथयामास सङ्गिनां तत्र संसदि।
तं वीरं स्वीराज्येऽहमावह्विष्यामि सत्वरम्।।४४४।।

वीर लक्षपति की वीरता की चर्चा चर के मुख से सुनकर, वह करुणासिन्धु, कीर्तिमान, हिन्दू-राज्य का पोषक और वीरों का रक्षक, वीर गुलाबसिंह आश्चर्यचकित होकर, मुक्तकण्ठ से मन्त्री के बल की प्रशंसा करने लगा, तत्पश्चात् उसने वहां अपने संगियों के समाज में कहा कि मैं अपूर्व शक्तिशाली वीर को शीघ्र अपने पास बुला लूंगा।

सहायत्वेन तस्य द्राक श्रीकिश्तवाडसंज्ञकम्।
तद्राज्यमपि चावश्यं ममाधीनं भविष्यति।।४४५।।
ततस्तेन नृपालेन समाहूतः स सादरम्।
स्वकीये शौभने राज्ये मन्त्रिपदे नियोजितः।।४४६।।
अहो गुलाबसिंह स विवेद मंत्रिणो बलम्।
रत्नकारो हि रत्नस्य करोति सुपरीक्षणम।।४४७।।

उस लक्षपति की सहायता से शीघ्र किश्तवाड़ नामक राज्य को अवश्य मैं अपने अधीन करूंगा। तदनन्तर उस महाराजा ने आदर के साथ अपने पास उसे बुलाया और मंत्री-पद पर नियुक्त कर दिया। अहा! वह महाराजा गुलाबसिंह मन्त्री लक्षपति की शक्ति को जान गया था क्योंकि जौहरी ही रत्न का समीचीन परीक्षण करता है।

मुन्यद्रयहिभये वर्षे गते वैक्रम राज्यतः।
भूपो गुलाबसिंहोऽसौ बहबलैः समन्वितः।।४४८।।
किश्तवाडजयार्थायेत प्रदेशं समाययौ।
सिंहस्यागमनं दृष्ट्वा तेगसिंहः स जम्बुकः।।४४९।।
दुर्जनैः सङ्गिभिः साकं शोकसंतप्तमानसः।
बभूव भय-संयुक्तश्चिन्तातुरश्च दुःखितः।।४५०।।

संवत् १८९९ विक्रमी में महाराजा गुलाबसिंह बहुत-सी सेना के साथ किश्तवाड़ को विजय करने के लिए इस प्रदेश में आया, सिंह के आगमन को देखकर, वह जम्बुक तेगसिंह अपने दुर्जन साथियों के साथ भयभीत, चिन्तातुर एवं दुःखी हो गया।

वीरलक्षपेतर्भक्ता अत्रत्याश्च प्रजाजना:।
तस्य भूपस्य दुष्टस्य बभूवु: प्रातपक्षिण:।।४५१।।
तस्मादसौ विना युद्धमस्माद्देशाश्च सत्वरम्।
परित्यज्य स्वकं राज्यमपदधाव दुर्मति:।।४५२।।
एवं सिंहस्य शौर्येण सहयोगेन मन्त्रिण:।
शासनं तेगसिंहस्य विना युद्धं लयं गतम्।।४५३।।

वीर लक्षपति के भक्त यहां के सारे लोग उस दुष्ट राजा के शत्रु बन गए थे। उससे वह भीरु राजा अपने राज्य को त्याग कर, इस देश से बिना युद्ध के ही तेज़ी से भाग गया। इस प्रकार शेर के शौर्य और वज़ीर लक्षपति के सहयोग से राजा तेगसिंह का शासन युद्ध के बिना ही सदा के लिए समाप्त हो गया।

अहोपुण्यमहोपुण्यं लोकानां पूर्वकर्मजम्।
यस्यैव च प्रभावेण प्रदेशे अस्मिन्समन्तत:।।४५४।।
राजागुलाबसिंहस्य प्रजाया हितकारिण:।
शासनं परमं श्रेष्ठं बभूव खलु संस्थितम्।।४५५।।
प्रबन्धायास्य देशस्य ततस्तेन महीभृता।
श्रीज़ोरावरसिंहस्तु नियुक्त मुख्याशासक:।।४५६।।

यहां के लोगों के पुण्य कर्म के प्रभाव से इस प्रदेश में सर्वत्र प्रजा के हितकारक श्री महाराजा गुलाबसिंह जी का शासन स्थित हुआ। फिर इस देश के प्रबंध के लिए उस महाराजा ने श्री जोरावर सिंह को मुख्य शासक नियुक्त किया।

किल्होरिया कुलोद्भूतो लोकानामतिवल्लभ:।
देवीभक्त: प्रगल्भश्च राजनीतिविशारद:।।४५७।।

समरकोविदैः साकं राज्यवृद्ध्यै महीभुजः।
नित्यं स चिन्तयामास ह्युपायान् सारगर्भितम्।।४५८।।
अथैकस्मिन्दिने वीरः पूजयितुं स चण्डिकाम्।
जगाम सङ्गिभिः सार्धं ग्रामं श्रीस्थलं प्रति।।४५९।।

वह किल्होरिया वंश में उत्पन्न, लोगों का प्रीति-भाजन, देवी-भक्त, साहसी और राजनीति में प्रवीण, वज़ीर ज़ोरावरसिंह युद्ध-पण्डितों के साथ महाराजा के राज्य की वृद्धि के लिए ही सारगर्भित उपायों को निरन्तर सोचा करता था। एक दिन वह वीर भगवती की पूजा करने के लिए साथियों के साथ श्रीस्थल ग्राम को गया।

पूजयितुं यदा देवीं गतः स जीर्णमन्दिरम्।
मन्दिरस्य स्थितिं वीक्ष्य बभूव दुःखसंयुतः।।४६०।।
तत्रैव कथितं तेन प्रणम्य वरदां शिवाम्।
श्रीलदाखाभिधं देशं जेतुमिच्छाम्यहं शिवे।।४६१।।
वाञ्छितं ते प्रसादाच्चेत् मम सिद्धं भविष्यति।
तर्हि ते मन्दिरं देवी! रचयिष्यामि सत्वरम्।।४६२।।
अत्रत्या आदिमा भूपा यं यज्ञमत्र वार्षिकम्।
कुर्वन्ति स्म विधानेन तव प्रीत्यै महेश्वरि।।४६३।।
अस्मिन् राज्येऽपि यज्ञः स यथाक्रमं भविष्यति।
इति विधाय सङ्कल्पं प्रतयाययौ पुरं प्रति।।४६४।।

जब वह भगवती की अर्चना करने के लिए पुराने टूटे-फूटे मन्दिर में गया तो मन्दिर की उस स्थिति को देखकर, उसे बड़ा दुःख हुआ और उसने वहां पर ही भगवती को नमस्कार करके कहा कि हे शिवा भगवती! मैं लद्दाख प्रदेश को जीतने की इच्छा अपने भीतर रखता हूं, यदि तेरी कृपा से मैं अपने निश्चय में सफल हुआ तो हे देवी! तेरा मन्दिर शीघ्र तैयार करा

दूंगा और यहां के पहले राजा लोग तेरी प्रसन्नता के लिए जिस वार्षिक यज्ञ को विधिवत् करते थे, इस राज्य में भी वह यज्ञ यथाक्रम होगा। यह संकल्प करके, वह नगर को लौट आया।

तदनु कर्मशीलेन तेनात्र राजमन्दिरे।
एका समरवीराणां समाहूता महासभा।।४६५।।
मध्ये तस्य समाजस्य ह्यासित्वाच वरासने।
प्रोवाच स इदं वाक्यं धृत्युत्साहविवर्धकम्।।४६६।।
भोः पराक्रमिणो वीराः! श्रृणुत वचनं मम।
युद्धाङ्गणे यो वीरो दर्शयति स्वकं बलम्।।४६७।।
प्रसादान्तस्य शौर्यस्य स लभतेऽक्षयं यशः।
भवति यशसा मान्यो मानवानां निरन्तरम्।।४६८।।

तदनन्तर उसने राज-मन्दिर में वीरों की एक सभा बुलाई और उस सभा में एक उत्तम आसन पर बैठ कर उस वीर ने यह धैर्य और उत्साह को बढ़ाने वाली बात कहीं— हे पराक्रमी वीरो!

आप मेरी बात सुनिए, युद्ध के प्राङ्गण में जो वीर अपने बल का प्रदर्शन करता है, निःसन्देह उस शौर्य के प्रभाव से वह अक्षय यश को प्राप्त करता है और यश द्वारा निरन्तर लोगों का मान्य बन जाता है।

यशस्वी मानवो लोके भवति कुलदीपकः।
अस्मिञ्जगति नित्यं स यशः कायेन जीवति।।४६९।।
अतो विश्रुतिलाभाय यूयं विक्रमशालिनः।
श्रीलदाखाभिधं देशं जयत खड्गलीलया।।४७०।।
पराक्रमेण युष्माकं जयलाभो भवेद् यदि।
तर्हि दास्यति भूपालो युष्मभ्यं पारितोषिकम्।।४७१।।

तेन दत्तः पुरस्कारोऽल्पो भवति कदाऽपि न।
स भूप एवं वीराणां शौर्यस्य वेत्ति गौरवम्।।४७२।।

यशस्वी मनुष्य कुल-दीपक होता है और इस संसार में वह सदैव यशरूपी शरीर से जीवित रहता है। आप विक्रमशाली लोग कीर्ति के लाभ के लिए तुरन्त खड्ग के खेल द्वारा लद्दाख प्रदेश को जीतें। आपके पराक्रम से यदि विजय-प्राप्त होगी तो आपको महाराजा गुलाबसिंह जी पारितोषिक प्रदान करेंगे, उनका दिया हुआ पुरस्कार कभी कम नहीं होता क्योंकि वे ही नरेश वीरों के शौर्य के गौरव को सम्यक् जानते हैं।

इति श्रुत्वा वचस्तस्य प्रवीराणां शिरोमणेः।
युद्धाय प्रोद्यताः सर्वे बभूवुर्युद्धपण्डिताः।।४७३।।
ततोऽतिसत्वरं तेन राजभक्तेन मन्त्रिणा।
प्रसादाज्जगदम्बाया विक्रमेण च सङ्गिनाम्।।४७४।।
स लदाखाभिधो देशो दुर्गमो बहुविस्तृतः।
महाराजाधिराजस्य राज्याधीनः कृतस्तदा।।४७५।।
जयलाभेन वीरः स बभूव हर्षसंयुतः।
प्रबन्धं तस्य देशस्य विधाय यथोचितम्।।४७६।।
नानोपकरणैः साकं स्मरन् भगवतीं शिवाम्।
प्रत्यराययौ ततः शीघ्रं किश्तवाडाभिधं पुरम्।।४७७।।

उस वीरों के शिरोमणि की बात को सुनकर, सारे युद्ध-पण्डित लोग युद्ध के लिए तैयार हो गए, फिर उस राज-भक्त वज़ीर ने भगवती की कृपा तथा साथियों की वीरता से दुर्गम एवं बहुत विस्तृत लद्दाख प्रदेश को महाराजा गुलाबसिंह के राज्य के अधीन कर दिया और वह वीर विजय-लाभ से बहुत प्रसन्न हुआ।

उस प्रदेश का समुचित प्रबन्ध करके, अनेक प्रकार के उपकरणों के साथ शिवा भगवती को स्मरण करते हुए वहां से शीघ्र किश्तवाड़-नगर में लौट आया।

अक्ष्यकङ्काहिभये वर्षे गते वैक्रमराज्यतः।
श्रीजोरावरसिंहेन पूर्वसंकल्पितं च तत्।।४७८।।
रचितं श्रीस्थले ग्रामे भवान्या मन्दिरं मुदा।
अतिरम्यं विशालं च स्वर्णकलशसंयुतम्।।४७९।।
तत आश्विनमासस्य वसुतिथौ सिते दले।
आनन्दराजदानेन श्रीकश्मीरनिवासिना।।४८०।।
होमः कृतो विधानेन तस्मिन्नवीनमन्दिरे।
स्थापिता मन्दिरे देवी चण्डिका वरदायिका।।४८१।।

विक्रम संवत् १८९२ में वज़ीर ज़ोरावरसिंह ने पूर्व निश्चित किया हुआ, वह देवी के मन्दिर का प्रसन्नता से निर्माण किया, जो बड़ा सुन्दर, विशाल और स्वर्ण-कलश से युक्त था। मन्दिर के निर्माण के बाद आश्विन मास की अष्टमी तिथि और शुक्ल-पक्ष में कश्मीर निवासी आनन्द राज़दान ने उस नवीन मन्दिर में वरदायिका चण्डिका देवी की स्थापना की और शास्त्र-विधि से हवन किया।

प्रचालितः पुनस्तेन मन्त्रीवर्येण धीमता।
पूर्वसङ्कल्पितो यज्ञो यथापूर्वं यथाविधि।।४८२।।
तस्मै वार्षिकयज्ञाय सर्वसाधनसंहतिम्।
प्रददौ राजकीयैव धर्मार्थपरिषद् सदा।।४८३।।

फिर बुद्धिमान् मन्त्री महोदय ने पूर्व संकल्पित यज्ञ, विधि के अनुसार जैसे पहले होता था, प्रचलित करवाया। इस वार्षिक यज्ञ के लिए सारी सामग्री की राशि राजकीय धर्मार्थ संसद् ही सदा देती थी।

जोरावरं सर्वगुणैः समेतं वीरं महावीरगतिं प्रलब्धम्।
अद्यापि सर्वे मनुजाः स्मरन्ति श्रीकिश्तवाड़स्य निवासिनस्तम्।।४८४।।

कार्याणि तेनाति विलक्षणानि कृतानि राज्यस्य हिताययानि।
ज्ञात्वा नरास्तानि समादरेण श्रद्धाञ्जलिं संप्रदिशन्ति तस्मै।।४८५।।

उस सर्व-गुण-सम्पन्न, महावीर-गति को प्राप्त करने वाले, वीर ज़ोरावरसिंह को आज भी किश्तवाड़ के निवासी सारे लोग याद करते हैं। उसने ज़ो काम जम्मू-कश्मीर राज्य की समुन्नत्ति के लिए किए, उनको जानकर, सारे मनुष्य आदर के साथ उस राज-भक्त हुतात्मा, महावीर जोरावरसिंह को श्रद्धाञ्जलि समर्पित करते हैं।

अथ लब्धलाभो लाभजीवः

अथ महामहीन्द्रस्य भानुवंशस्य भास्वतः।
श्रीरणवीरसिंहस्य राज्यकाले सुखान्विते।।४८६।।
श्रीकिश्तवाड़ वास्तव्य एक आसीत् सुभाग्यवान्।
युवको महताकांक्षी लाभजीवाभिधः सुधीः।।४८७।।

महाराजाधिराज, भानु-वंश के सूर्य श्री रणवीरसिंह के सुखमय शासन काल में किश्तवाड़-निवासी, महत्वाकांक्षी, बुद्धिमान् लाभजी नाम का एक युवक था।

एकस्मिञ्छोभने कालेऽसौ ग्रामं श्रीस्थलं ययौ।
तत्र सं पूजयामास भवानीं श्रद्धया सह।।४८८।।
ततो बद्धाञ्जलिर्भूत्वा विनयेन समन्वितः।
प्रोवाच भवने देव्याः स्ववाञ्छितमिदं वचः।।४८९।।
जननि! तव पुत्रोऽहं लप्स्ये तेऽनुग्रहाद् यदि।
मनोऽभिलषितं लाभं तर्ह्यत्रैकां सुविस्तृताम्।।४९०।।
निर्मास्ये धर्मशालां द्राक् मानवानां हितेच्छया।
करिष्यामि महायज्ञं बहुसम्भार-संयुतम्।।४९१।।

एक शुभ समय में वह श्रीस्थल ग्राम को गया; वहां उसने भगवती की श्रद्धा से पूजा की, फिर हाथ जोड़कर विनय के साथ भवानी के भवन में अपनी इच्छित यह बात बोला कि हे जननि! मैं तेरा पुत्र यदि तेरी कृपा से मनोवाञ्छित लाभ प्राप्त करूं तो यहां श्रीस्थल ग्राम में एक विस्तृत धर्मशाला का लोगों की हितकामना से शीघ्र निर्माण करूंगा और बहुत सम्भार से युक्त एक महायज्ञ करूंगा।

पुनर्नत्वा महामायां तत्रत एव सत्वरम्।
इन्द्रपुरसमाकारं स जम्बुनगरं ययौ।।४९२।।
कृपया जगदम्बायाः सोऽचिरादेव कीर्तिमान्।
सुवरिष्ठं पदं प्राप जम्बुनाथस्य शासने।।४९३।।

फिर महामाया को नमस्कार करके, वह तत्काल वहां से ही इन्द्रपुर के समान आकार वाले जम्बु-नगर को चला गया। वहां उसने भगवती की कृपा से शीघ्र जम्मू-नरेश के राज्य में श्रेष्ठ पद को प्राप्त किया।

तदनु धर्मशालैका रचिता तेन विस्तृता।
एतास्मिञ्छ्रीस्थलेग्रामे कौवेर्यां दिशि मन्दरात्।।४९४।।
तस्यां सुधर्मशालायां पुरासङ्कल्पितो मखः।
कृतः श्रीलाभजीवेन धर्मशास्त्रविधानतः।।४९५।।

तत्पश्चात् उसने एक विस्तृत धर्मशाला की रचना श्रीस्थल ग्राम में भगवती के मन्दिर की उत्तर दिशा में की और उसी धर्मशाला में धर्मशास्त्र के विधान के अनुसार पहला संकल्पित यज्ञ भी सम्पादन किया।

देव्याः प्रसादाद्धि स लब्धलाभः श्रीलाभजीवो बहुभाग्यशाली।
भूपस्य भक्तो जनवृन्दमान्यो मंत्रीपदं प्राप्य सुखी बभूव।।४९६।।
एतद्वचः संपरिचिन्त्य लोका अद्यापि देव्याः शरणं प्रयान्ति।
संप्राप्य लाभं निजवाञ्छितं ते सदैव दुर्गां मनसा स्तुवन्ति।।४९७।।

भगवती की कृपा से ही वह लाभ को प्राप्त करने वाला, भाग्यशाली, लोगों का मान्य और महाराजा का भक्त लाभजी मन्त्री-पद को प्राप्त करके, सुखी हुआ। इस बात को भली भांति सोचकर, आज भी लोग भगवती की शरण में जाते हैं और अपनी कामना में सफलता प्राप्त करके वे सदैव मन से दुर्गा की स्तुति करते रहते हैं।

अथ देवी-लीला

अहो राज्यमहो राज्यं धर्ममूर्तेर्दयानिधेः।
ऋषेः प्रतापसिंहस्य जम्बु-कश्मीर-भूपतेः।।४९८।।
तस्मिन हर्षप्रदे राज्ये पवित्रेचातिशोभने।
भयहीना सुखैर्युक्ताऽविद्यत निखिला प्रजा।।४९९।।
उत्कोचभिक्षुरन्यायी राज्यधनापहारकः।
व्यसनी दुर्जनः क्रूरो नैवासीत्कोऽपि शासकः।।५००।।
मद्यपो धर्महीनश्च दुर्मदः शास्त्रदूषकः।
वञ्चको नाभवन्नेता कस्या अपि च संसदः।।५०१।।
दुग्धमन्नं घृतं लोकास्तदाऽखादन् यथारुचि।
वनस्पतेर्घृतं नावेदत्रत्यः कोऽपि मानवः।।५०२।।
प्रतापस्य प्रतापेन सर्वे राज्यनिवासिनः।
आसन्निष्कपटाधीराः सत्यधर्म परायणाः।।५०३।।

धर्म-मूर्ति, दया-निधि, जम्मू-कश्मीर-नरेश, राज-ऋषि महाराजा प्रतापसिंह का राज्य-काल बड़ा प्रशंसनीय था। उस पवित्र और सुखमय राज्य में सारी प्रजाभयहीन और सुथी थी। रिश्वतखोर, राज्य का धन हरने वाला, अन्यायी, व्यसनी, दुर्जन और क्रूर कोई भी हाकिम नहीं था। शराब पीने वाला, नास्तिक, दुर्मद, शास्त्र-दूषक और ठग किसी भी संस्था का कोई नेता न था। लोग दूध, अन्न और घृत यथारुचि खाते थे। यहां का कोई भी मनुष्य वनस्पति घृत के नाम को भी नहीं जानता था। महाराजा प्रतापसिंह के प्रताप से राज्य के सारे निवासी निष्कपट, धीर और सत्य-धर्म-परायण थे।

तस्मिन् धर्मयुगेऽप्यत्र स क्रमेणागतो मखः।
प्रमुदे च महादेव्याः सदाभवद् यथाविधि।।५०४।।
तदासीदेकदा कोऽपि किश्तवाडोपमण्डले।
पण्डितो लक्ष्मणो भानो मुख्योपमण्डलेश्वरः।।५०५।।
राजकीयं मखं कर्तुं स्वाधिकारेण गर्वितः।
जगाम श्रीस्थलंग्राममारुह्य शिविकामसौ।।५०६।।
दर्शनाय महादेव्या यदा स मन्दिरं गतः।
हा! दुर्भाग्यवशात्तत्र न दृष्टा तेन चण्डिका।।५०७।।
आश्यर्चचकितोभूत्वा पप्रच्छ सोऽखिलान् जनान्।
अत्र सा परमेशानी विद्यते कुत्र संस्थिता।।५०८।।

उस धर्म-युग में भी वह पूर्व रीति से चला आया हुआ यज्ञ भगवती की प्रसन्नता के लिए विधि के अनुसार यहां श्रीस्थल में सदा नियत काल पर होता था। तब महाराजा प्रतापसिंह के शासन-काल में एक बार यहां किश्तवाड़ की तहसील में कोई पण्डित लक्ष्मण भान नाम का तहसीलदार था। क्रमागत राजकीय महायज्ञ करने के लिए अधिकार से गर्वित वह तहसीलदार पालकी पर सवार होकर, श्रीस्थल में गया। वहां जब वह भगवती के दर्शनार्थ मन्दिर में गया तो हाय! दुर्भाग्यवश उसे वहां महामाया दिखाई न दी। वह आश्चर्य से चकित होकर सारे लोगों से पूछता कि वह परमेश्वरी यहां किस स्थान पर स्थित है।

तस्य परिस्थितिं दृष्ट्वा विचित्रां भयसंयुताम्।
तत्रस्था यात्रिणः सर्वे बभूवुरति विस्मिताः।।५०९।।
समाप्य तं महायज्ञमन्येद्युः सह सङ्गिभिः।
स्तुवन् भगवतीं दुर्गां प्रत्यायौ पुरं प्रति।।५१०।।

अत्रागत्यैव तत्कालमवरोधात्तु हृद्गतेः।
हन्त! लक्ष्मणभानः स मर्त्यलोकाद्दिवं गतः।।५११।।

उसकी विचित्रि और भयसंयुक्त परिस्थिति को देखकर, वहां ठहरे हुए सारे यात्री लोग विस्मित हो गए। यज्ञ का कार्य समाप्त करके, दूसरे दिन वह साथियों के साथ नगर की ओर भगवती की स्तुति करता हुआ, लौट आया। यहां पहुंचकर ही, उसी समय हाय! हृदय की गति रुक जाने से वह लक्ष्मण भान मृत्यु-लोक से स्वर्ग को चला गया।

तां देवलीलामवलोक्य लोका भयेन युक्ताः सकलाः बूभूवुः।
तस्माद्दिनात्कोऽपि जनः सुशीलो यानं समारुह्य गतो न तत्र।।५१२।।

उस विलक्षण देव-लीला को देखकर, सारे लोग भयभीत हो गए और उस दिन से कोई भी सुशील, धार्मिक व्यक्ति वहां श्रीस्थल में, पालकी आदि यान पर सवार होकर नहीं गया।

अथ नवीन-मन्दिरस्य निर्माणम्

दिवंगते कृपासिन्धौ प्रतापे धरणीपतौ।
सूर्यवंशस्य सूर्येण प्रजायाः सद्धितैषिणा।।५१३।।

महाराजाधिराजेन हरिसिंहेन धीमता।
वंशक्रमागतं राज्यं स्वाधिकारे कृतं ततः।।५१४।।

राज्ये तस्याभवत्कार्यं श्रीस्थले रचनात्मकम्।
निर्माणं धर्मशालानां रचना मन्दिरस्य च।।५१५।।

शिष्ट्या तस्य नरेशस्य राजकीयाधिकारिभिः।
विक्रीताः प्रचुरा वृक्षा देवीलारण्यसंस्थिताः।।५१६।।

कृपासिन्धु, महाराजा प्रतापसिंह के स्वर्गवास होने पर सूर्यवंश के सूर्य प्रजा के सच्चे हितैषी और बुद्धिमान् महाराजाधिराज हरिसिंह जी ने परम्परागत राज्य को अपने अधिकार में कर लिया। उनके राज्यकाल में श्रीस्थल ग्राम में रचनात्मक कार्य हुआ अर्थात् धर्मशालाओं और मन्दिर का नव-निर्माण हुआ। उन महाराज की आज्ञा से अधिकारियों ने देवीला वन में स्थित बहुत से वृक्षों को बेच दिया।

वृक्षेभ्यो लब्धवित्तेन यत्नैश्च कर्मकारिणाम्।
तद्रचनात्मकं कार्यं पूर्णं बभूव सत्वरम्।।५१७।।

कारयितुं च तत्कार्यमेका संसद् महीभृता।
निर्मिता च त्रिभिर्योग्यैः समाजिकैः समन्विता।।५१८।।

सदस्याः संसदस्तस्या अभवन्ये महाशयः।
तेषां नामानि संब्रूमो वयमत्र समादरात्।।५१९।।
आसीत्तत्रादिमः सभ्यः पण्डितः शिवनायकः।
द्वितीयः काबिलासिंहस्तृतीयश्च शिवाश्रयः।।५२०।।

वृक्षों के विक्रय से प्राप्त धन और कार्यकर्त्ताओं के प्रयत्नों द्वारा वह सारा तामीरी काम बहुत शीघ्र सम्पूर्ण हो गया। उस काम के सम्पादन कराने के लिए महाराजा महोदय ने तीन योग्य सदस्यों से युक्त एक तामीरी-समिति बनाई थी। उस समिति के जो सदस्य महाशय थे उनके नाम हम यहां आदर से वर्णन करते है। समिति का पहला सदस्य पण्डित शिवनाथ (कन्सरवेटर) दूसरा काबिलासिंह (दहसीलदार) और तीसरा दीवान शिवसरण (डी.एफ.ओ.) था।

त्रयो महानुभावास्ते मन्दिररचनात्परम्।
अभवन् रोगसंयुक्ता विचित्रदैवलीलया।।५२१।।
हन्त! तेष्वचिरादेव संत्यज्य निजबान्धवान्।
हृद्गतेश्वरोधात्तौ द्वौ शिवौ त्रिदिवंगतौ।।५२२।।
तयोर्मृत्युं च संवीक्ष्य भयभीतश्च चिन्तितः।
आगतः काबिलासिंहो देव्याश्चरणसंनिधौ।।५२३।।
मुदे देव्याः कृतस्तेन विधिनात्र महाकृतुः।
प्रसादाज्जगदम्बाया नीरोगोऽभूत्स सत्वरम्।।५२४।।
इत्थमेवाद्भुतां लीलां दर्शयति सदैव सा।
लीलावती महादेवी मर्त्यानां ज्ञानवृद्धये।।५२५।।
यो याति शरणं तस्याः शुद्धभावेन मानवः।
स लभते सुखं शान्तिं भवान्या अनुकम्पया।।५२६।।

मन्दिर की रचना के अनन्तर वे तीनों सदस्य विचित्र भाग्य-लीला से रोगयुक्त हो गए और थोड़े समय के बाद हाय! उनमें से दो अर्थात् पण्डित

शिवनाथ और दीवान शिवसरण हृदय की गति रुक जाने से अपने बान्धवों को सदैव के लिए परित्याग करके, शिवलोक को चले गए। उन दोनों की मृत्यु को देखकर, चिन्तातुर एवं भयभीत काबिलासिंह भगवती के चरणों के निकट आ गया। यहां उसने शास्त्र-विधि के अनुसार भगवती की प्रसन्नता के लिए एक बृहद् यज्ञ किया और भगवती की कृपा से बहुत शीघ्र निरोग हो गया।

इस प्रकार वह लीलावती महादेवी मनुष्यों की ज्ञान-वृद्धि के लिए अपनी अद्भुत लीला को दिखाती रहती है। जो मनुष्य शुद्धभाव से उसकी शरण में जाता है, वह उस भगवती की कृपा से सुख और शान्ति को प्राप्त करता है।

अथ धर्मार्थपरिषदे निवेदनम्

अस्मिन्नाधुनिके काले विचित्रे लोकशासने।
पादपविक्रयाल्लब्धं शिवाया निखिलं धनम्।।५२७।।
संचितमस्ति तत्सर्वं कोषे धर्मार्थसंसदः।
तस्याश्च सम्पदोलब्धः सर्वो लाभस्तु वार्षिकः।।५२८।।
निर्माणाय गृहादीनां भृत्यानां वेतनाय च।
प्रत्यब्दं श्रीस्थले ग्रामे व्ययं याति यथाक्रमम्।।५२९।।

इस वर्तमान विचित्र लोक-राज्य के काल में देवीजी का वृक्षों के व्यापार से प्राप्त धन धर्मार्थ-ट्रस्ट जम्मू के कोष में संचित है। उस धन से लब्ध वार्षिक ब्याज यहां श्रीस्थल ग्राम में धर्मशालादि के निर्माण एवं नौकरों के वेतन के लिए ही प्रतिवर्ष यथारीति व्यय होता रहता है।

सुपुत्रो धरणीनाथस्य हरिसिंहस्य धीमतः।
प्रमुख्यः संसदस्तस्याः कर्णसिंहोऽस्ति साम्प्रतम्।।५३०।।
विद्यतेऽसौ महाविद्वान् धार्मिको लोकवल्लभः।
विवेकी राजनीतिज्ञो दृढव्रतः प्रियम्वदः।।५३१।।
पुरा जम्बूनृपैरत्र रक्षणायार्यसंस्कृतेः।
स्थापिता श्रद्धया साकं धर्मार्थपरिषद् च सा।।५३२।।
तस्याः परिषदश्चास्ति कर्णसिंहो विधानतः।
सर्वाधिकारसम्पन्नो वीक्षकः पालकोऽपि च।।५३३।।

धर्मार्थ-ट्रस्ट के प्रमुख आजकल बुद्धिमान् महाराजाधिराज हरिसिंह

जी के सुपुत्र श्री कर्णसिंह जी हैं। ये महानुभाव बड़े विद्वान्, धार्मिक, लोकप्रिय, विवेकी, दृढ़व्रत, प्रियभाषी और राजनीतिज्ञ हैं। उपर्युक्त धर्मार्थ-ट्रस्ट की स्थापना पूर्वकाल में जम्मू के महाराजाओं ने श्रद्धा के साथ इस राज्य में हिन्दू-संस्कृति की रक्षा के लिए की थी। वर्तमान काल में क्रमागत विधान के अनुसार उस ट्रस्ट के सर्वाधिकार-सम्पन्न निरीक्षक और पालक श्री डॉक्टर कर्णसिंह महोदय हैं।

श्रीस्थलमन्दिरस्यापि संरक्षकस्तु स एव च।
स्वीकृतः सर्वसम्मत्या किशतवाडनिवासिभिः।।५३४।।
जम्बुपुरे स्थितायां च तेन धर्मार्थ संसदि।
श्रीमान् कमलसिंहस्त्वध्यक्षपदे नियोजितः।।५३५।।
शिष्ट्या तस्य प्रधानस्य स्थानीया समितिः सदा।
करोति रचनामत्र गृहादीनां निजेच्छया।।५३६।।
समितिः प्रतिवर्षं साऽनावश्यकेषु कर्मसु।
लाभं च वार्षिकं सर्वं समाप्नोति सदैव हि।।५३७।।
किन्तु धर्मप्रचाराय ग्रन्थानां लेखनाय च।
मनागपि कृतं कार्यं नैवात्र संसदा तया।।५३८।।

श्रीस्थल मन्दिर के संरक्षक भी वे ही डॉक्टर महोदय किशतवाड़ के निवासियों ने सर्व-सम्मति से स्वीकार किए हैं। जम्मू-नगर में स्थित धर्मार्थ-ट्रस्ट का उन्होंने श्री कमल सिंह* जी को प्रधान नियुक्त किया है। स्थानीय श्रीस्थल देवी ट्रस्ट जिसकी नियुक्ति भी वे ही करते है, वह ट्रस्ट धर्मार्थट्रस्ट के प्रधान की आज्ञा से यहां श्रीस्थल में अपनी इच्छा के अनुसार धर्मशाला आदि की रचना करता रहता है। इस प्रकार इन अनावश्यक कार्यों में ही प्रतिवर्ष सारा वार्षिक सूद सदैव व्यय हो जाता है किन्तु धर्म-प्रचार एवं सद्ग्रन्थों के लेखन के लिए उसने यहां आज तक थोड़ा-सा भी कोई कार्य नहीं किया है।

---

* श्री कमल सिंह १९७४-७५ में ट्रस्ट के प्रधान थे।

पशुबलिं मुदेदेव्या अद्यापि बहवो जनाः।
श्रीस्थले पावने तीर्थे कुर्वन्ति हृष्टचेत्तसा।।५३९।।
कालस्य दुष्प्रभावेण संगत्या च दुरात्मनाम्।
नास्तिका यात्रिणः केचित्पिबन्त्यत्र सुरामपि।।५४०।।
अत्राति पावने तीर्थे सेवनं मद्यमांसयोः।
संवीक्ष्य धार्मिका लोका भवन्ति दुःखसंयुतः।।५४१।।
वितण्डावादमातङ्कमनुशासनहीनताम् ।
धर्मबोधं विना नैव त्यजति कोऽपि मानवः।।५४२।।
अतः परिषदः सर्वे देवी-श्रीस्थलसंसदः।
अपाकर्तुं कुरीतिं तु लोकक्लयाणकर्मणि।।५४३।।
स्वकर्तव्यं समालोक्य सद्भावेन समन्विताः।
हिन्दुधर्मप्रचाराय प्रयतेरन्निरन्तरम्।।५४४।।

आज भी श्रीस्थल के पवित्र तीर्थ पर बहुत से व्यक्ति भगवती की प्रसन्नता के लिए प्रसन्न मन से पशु की बलि देते हैं तथा समय के दुष्प्रभाव और दुर्जनों की संगति से अब कुछ नास्तिक यात्री लोग यहां मद्यपान करते हुए भी देखे जाते हैं। इस पवित्र तीर्थ पर मद्य और मांस का सेवन देखकर, धार्मिक लोग बड़े दुःखी हो जाते है। धर्म-ज्ञान के बिना मनुष्य वितण्डावाद, आतङ्क और अनुशासनहीनता को नहीं छोड़ सकता है। अतः श्रीस्थल देवी ट्रस्ट के सारे सदस्य कुरीतियों को हटाने और लोक-कल्याण के कार्य में अपने कर्त्तव्य का ठीक प्रकार से अवलोकन करके, हिन्दू-धर्म के प्रचार के लिए प्रयत्न करें।

अथ देवीभक्तः सिद्धो वासुदेवः।

वस्वग्न्यङ्कभये वर्षे गते वैक्रमराज्यतः।
जिज्ञेऽत्र बालकश्चैको विप्रकुलेऽतिपावने।।५४५।।
आसीत्तस्य पिता श्रीमान् रामजीवो द्विजोत्तमः।
माता च द्रौपदी देवी सुशीला प्रियवादिनी।।५४६।।
वासुदेवाभिधानश्च शतपत्रनिभेक्षणः।
पितृवेश्मनि नित्यं स बालो बवृधे क्रमात्।।५४७।।
यूनि वयसि संप्राप्ते पराक्रमी निजेच्छया।
राज्यरक्षाविभागे वै वैतिनिको बभूव सः।।५४८।।

विक्रम संवत् १९३८ को यहां किशतवाड़ में एक पवित्र ब्राह्मण-कुल में एक बालक उत्पन्न हुआ। उसके पिता का नाम श्री रामजी और माता का नाम द्रौपदी देवी था। वह कमल के समान नेत्र वाला वासुदेव नामक बालक पिता के घर में नित्य क्रमपूर्वक बढ़ने लगा, युवा अवस्था के प्राप्त होने पर वह पराक्रमी सेना विभाग में नौकर हो गया।

दुर्गपालो नियुक्तोऽस्मिन् प्रान्ते सेनाधिकारिभिः।
कर्तव्यं पालयन् सम्यक् तथा देवीमपूजयत।।५४९।।
दिवारात्रं सपुण्यात्मा जागरित्वा निरन्तरम्।
स्तोत्राणि च महादेव्या अगायत् शान्तचेतसा।।५५०।।
सद्भक्त्याभक्तवर्यस्य कलौकाले विगर्हिते।
तस्मै साक्षाद्ददौ देवी दर्शनं सिद्धिदायकम्।।५५१।।

सेनाधिकारियों ने उसे किशतवाड़ के दुर्ग का रक्षक नियुक्त किया। वह अपने कर्तव्य को ठीक प्रकार से पालता हुआ, देवी की आराधना भी करता

रहता था। वह पवित्र आत्मा रात-दिन जागकर, निरन्तर शान्त मन से भगवती के स्तोत्र गाता रहता था। उस श्रेष्ठ भक्त की सच्ची भक्ति से इस गर्हित कलियुग में भगवती ने उसे सिद्धिप्रद अपना साक्षात् दर्शन प्रदान किया।

अद्भुतादर्शनात्तस्याः संप्राप्य परमं सुखम्।
बभूव त्यागशीलः स तापसश्च दिगम्बरः।।५५२।।
सुख-दुःखविहीनश्च दृढव्रतो जितेन्द्रियः।
समदर्शी कृपालुश्च रागद्वेष-विवर्जितः।।५५३।।
महत्तां तस्य संवीक्ष्य बहवो मानवाः सदा।
पूजयन्तिस्म तं सिद्धं निर्द्वन्द्वं शान्तमानसम्।।५५४।।
यो योऽभूत्तस्य सिद्धस्य देवीभक्तस्य सेवकः।
स स एवाभवन्मर्त्यः सर्व-सौख्य-समन्वितः।।५५५।।

जगदम्बा के उस अद्भुत दर्शन से परम सुख को उपलब्ध करके, वह त्यागी, तपस्वी, दिगम्बर, सुख-दुःख से विहीन, दृढ़व्रत, जितेन्द्रिय, समदर्शी, कृपालु और रागद्वेष से रहित हो गया। उस सिद्ध महात्मा की महत्ता को देखकर, बहुत से लोग उस द्वन्द्व रहित, शान्त मन वाले को सदैव पूजते थे। जो-जो मनुष्य उस देवी-भक्त का सेवक बना वह-वह सब सुखों से युक्त हो गया।

भ्वक्षिनखमिते वर्षे गते वैक्रमराज्यतः।
स्मरन् स मनसा देवीं मर्त्यलोकाद् दिवंगतः।।५५६।।
तस्य श्रीवासुदेवस्य देवीभक्तस्य धीमतः।
समाधिं विद्यते त्वत्र मन्त्रिणां शङ्करालये।।५५७।।

तं समाधिं नरो नित्यं योऽर्चेत् सच्छ्रद्धया सह।
स लभेत धनं धान्यं शौर्यं कीर्तिश्च सद्गतिम्।।५५८।।

विक्रम सम्वत् २०२१ को वह महात्मा मन से भगवती का स्मरण करता हुआ, नश्वर संसार को त्याग कर, स्वर्ग-लोक को चला गया। उस देवीभक्त वासुदेव की समाधि यहां किश्तवाड़ में वज़ीरों के शिवालय में विद्यमान है। जो मनुष्य नित्य उस समाधि की पूजा करे वह धन, धान्य, शौर्य, कीर्ति और सद्गति को प्राप्त करे।

एवं यदा सुमनसा शरणं शिवाया।
दुःखातुरो भययुतो मनुजो गतो यः।।
सर्वाणि तस्य दुरितानि सदैव लोके।
शीघ्रं विनाशयति सत्कृपया शिवा सा।।५५९।।
यं मानवं भगवती निखिलेश्वरी सा।
संवीक्षते बहुमनोहर-सौम्यदृष्ट्या।।
तस्मै ददाति विभवं बहुलं च सौख्यं।
पुत्रं प्रियां गुणगणं परमार्थलाभम्।।५६०।।
अर्चन्ति तां ये मनसा सदैव।
लीलामयीं श्रीस्थलवासिनीं च।।
ते मानवाः सत्कृपया भवान्या।
मानं सुकीर्तिं सुगतिं लभन्ते।।५६१।।

इति देवीदर्शने सप्तमः पटलः

समाप्तं चेदं देवीदर्शनम्

इस प्रकार जो कोई दुःखी, भयभीत मनुष्य सच्चे मन से भगवती की

शरण में जाता है, उसकी सारी बुराइयों का शिवा भगवती सदैव अपनी कृपा से विनाश कर देती है। जिस मनुष्य को वह सर्वेश्वरी, भगवती अपनी अति मनोहर सौम्य दृष्टि से देखती है, उसको वैभव, अत्यन्त सुख, पुत्र, स्त्री, गुणों का समूह और परमार्थ लाभ प्रदान करती है। जो मनुष्य मन से लीलामयी, श्रीस्थलवासिनी की निरन्तर अर्चना करते हैं वे भगवती की कृपा से मान, सुकीर्ति और सुगति प्राप्त करते हैं।

अथ दुर्गार्चन-विधिः

अधुनात्र प्रवक्ष्यामो वयं यात्रिणां कृते।
पूजाविधिं जगन्मातुः सर्वसिद्धि-प्रदायकम्।।१।।

अब हम यहां देवी के मन्दिर की यात्रा करने वाले यत्रियों के लिए जगज्जननी की सर्व-सिद्धि प्रदायक पूजा को कहेंगे। माता के भवन में प्रवेश करके, यात्री लोग—

पृथ्वित्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता।
त्वं च धारय मां देवि पवित्रं कुरू चासनम्।।२।।

इस मन्त्र को पढ़कर, आसन पर थोड़ा जल छिड़क कर, आसन पर बैठें पुनः हाथ जोड़कर—

गुरूर्ब्रह्मा गुरूर्विष्णुर्गुरूः साक्षान्महेश्वरः।
गुरूरेव जगत्सर्व तस्मै श्रीगुरवे नमः।।३।।

इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए, मन से गुरू को नमस्कार करें। फिर दक्षिण हाथ से निम्न मन्त्रों द्वारा शरीर के विभिन्न अङ्गों का स्पर्श करें—

आपः स्तनयोः।।४।। इससे वक्षस्थल के दोनों ओर।

ज्योतिर्नेत्रयोः।।५।। इससे आँखों का—

रसो मुखे।।६।। इससे मुख का—

अमृतं ललाटे।।७।। इससे मस्तक का—

ओ३म् ब्रह्मभूर्भवः स्वः शिरसि।।८।। इससे सिर का स्पर्श करें। पुनः चावल के थोड़े से दाने हाथ में लेकर—

अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भुवि संस्थिताः।
ये भूता विघ्नकर्तारस्ते नश्यन्तु शिवाज्ञया।।९।।

इस मन्त्र से चावल के दाने दक्षिण दिशा की ओर फेंक दें। फिर शुद्ध-जल हाथ में लेकर—

ओ३म् पवित्रोऽपवित्रो वा सर्वावस्थांगतोऽपि वा।
यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः।।१०।।

उस जल को इस मन्त्र द्वारा अपने शरीर पर छिड़क कर, आत्मशोधन करें। पश्चात् कुश मुद्रिका—

कुशा हरति पापानि कुशा कल्याणदायिका।
तस्मात्कुशपवित्रं तु श्रद्धया धारयाम्यहम्।।११।।

इस मन्त्र से अनामिका उँगली में धारण करें, और— **आत्मने नारायणाय गन्धो नमः, अर्घो नमः पुष्पं नमः।।१२।।** इन शब्दों से मस्तक पर तिलक, चावल और फूल धारण करें। फिर हाथ जोड़ कर—

सुप्रकाशो महादीपः सर्वतिमिरनाशकः।
प्रसीद मम गोविन्द दीपोऽयं परिकल्पितः।।१३।।

इस मन्त्र से दीपक को नमस्कार करें, और—

वनस्पति रसो दिव्यो गन्धाढ्यो गन्धउत्तमः।
आह्वानं सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम्।।१४।।

इससे धूप को नमस्कार करें, तथा—

नमो धर्म-निधानाय नमः सुकृतिसाक्षिणे।
नमः प्रत्यक्षदेवाय भास्वराय नमो नमः।।१५।।

इससे सूर्य को नमस्कार करें। तदनु पात्र में जल लेकर—

यत्रास्ति माता न पिता न बन्धुर्भ्रातापि नो यत्र सुहृज्जनश्च।
न जायते यत्र दिनं न रात्रिस्तत्रापि दीपं शरणं प्रपद्ये।।१६।।
चण्डिका पूजन निमित्तं धूपदीपसंकल्पात् सिद्धिरस्तु धूपो नमः दीपं नमः।।

यह मन्त्र पढ़कर, जल निर्माल्य पात्र में डाल दें। पुनः फूल हाथ में लेकर—

भवानि वरदे देवि सर्वसौभाग्यदायिनि।
गृहाण त्वं महादेवि पवित्रमिदमासनम्।।१७।।

इस मन्त्र से फूल आसन के रूप में भगवती को भेंट करें। पुनः हाथ जोड़कर—

आगच्छागच्छ देवित्वं चण्डमुण्डविमर्दिनि।
आवहयामि भक्तया त्वां गृहाणार्चां सुरेश्वरि।।१८।।

इस मन्त्र द्वारा भगवती का आह्वान करें, तदनन्तर जल-पात्र में लाजाएं, केसर, सुगन्धित द्रव्य, दर्भा और जल लेकर—

सर्वौषधिसमायुक्तं जलमतिसुशोभनम्।
पाद्यर्थं ते जगन्मातः स्वीकुरु त्वं महेश्वरि।।१९।।

इस मन्त्र द्वारा उक्त पदार्थों से भगवती के पाँव धोवें। फिर पात्र में शुद्ध जल, दूध, दही, घृत, चावल, जव, कुशा, तिल और सरसों डालकर—

दधिक्षीरादिसंयुक्तमर्घ्यमतिमनोहरम्।
गृहाण त्वं महादेवि सच्छ्रद्धया समर्पितम्।।२०।।

उक्त द्रव्य इस मन्त्र द्वारा भगवती के सिर पर धरें, फिर शुद्ध जल लेकर—

पवित्रं शीतलं तोयं पद्मसौरभ-संयुतम्।
ददाम्याचमनं तुभ्यं स्वीकुरु जगदीश्वरि।।२१।।

इस द्वारा भगवती को आचमन निवेदन करें, तत्पश्चात् शुद्ध जल से—

पवित्रेणाम्भसादेवि त्वां स्नापयामि चण्डिके।
प्रसीद परमेशानि सर्व पापविनाशिनि।।२२।।

इस मन्त्र द्वारा भगवती को स्नान करावें। तत्पश्चात्—

कौशेय कोमलं वस्त्रमीषद्धोतं च नूतनम्।
धारय त्वं मया दत्तमगजेऽघनाशिनि।।२३।।

इस मन्त्र से वस्त्र पहनावें। और—

हाटक कलधौताभ्यां विनिर्मितं विभूषणम्।
अङ्गीकुरु महादेवि शिवस्य हृदयेश्वरि।।२४।।

इस मन्त्र से भूषण पहरावें। तथा—

कर्पूर कुंकुमाभ्यां च निर्मितं बहुशोभनम्।
गन्धं ददामि ते देवि धारय भुवनेश्वरि।।२५।।

इस मन्त्र से देवी को तिलक लगावें, फिर—

विविधानि सुपुष्पाणि विचित्राणि महेश्वरि।
ददामि श्रद्धाय साकं स्वीकुरु वरदायिके।।२६।।

इस मन्त्र से पुष्प चढ़ावें, और

सुगन्धिसंयुतं धूपमौषधिभिर्विनिर्मितम्।
त्वं गृहाण मयादत्तं शरदिन्दुनिभानने।।२७।।

इस मन्त्र से धूप और—

दीपकं तमसः शत्रुं कपिलाघृतपूरितम्।
त्वां दर्शयामि पद्माक्षि प्रसीद परमेश्वरि।।२८।।

इस मन्त्र से दीप-दर्शन करावें, तत्पश्चात्—

पवित्रं सुरसैः पूर्णं नानाव्यञ्जनसंयुतम्।
नैवेद्यं देवि गृह्णीष्व मया दत्तं महेश्वरि।।२९।।

इस मन्त्र से नैवेद्य समर्पण करें, तथा—

पवित्रं शीतलं तोयं पद्म-सौरभ-संयुतम्।
ददाम्याचमनं तुभ्यं गृहाण जगदीश्वरि।।३०।।

इस मन्त्र से आचमन भेंट करें, एवं—

स्वर्णरजताभ्यां च तिलैश्च तण्डुलैर्युताम्।
ददामि ते यथाशक्ति दक्षिणां परमेश्वरि।।३१।।

इस मन्त्र द्वारा दक्षिणा समर्पित करें। तदनु निम्न स्तोत्र से आरती उतारें—

आरती

यत्कर्म-धर्म-निलयं प्रवदन्ति तज्ज्ञाः,

यज्ञादि पुण्यमखिलं सकलं त्वयैव।

त्वं चेतना यत इति प्रविचार्य चित्ते,

नित्यं त्वदीय चरणौ शरणं प्रपद्ये।।१।।

पाथोऽधिनाथ तनया पतिरेष शेष,

पर्यङ्क लालित वपुः पुरुषः पुराणः।

त्वन्मोह-पाश-विवशो जगदम्बसोऽपि,

व्याघूर्णमाननयनः शयनं चकार।।२।।

तत कौतुकं जननि यस्य जनार्दनस्य,

कर्णप्रसूतमलजौ मधु-कैटभाख्यौ।

तस्यापि यौ न भवतः सुलभौ निहन्तुं,

त्वन्मायया कविलतौ विलयं गतौ तौ।।३।।

यन्माहिषं वपुरपूर्वबलोपपन्नं,

यन्नाक नायक पराक्रम जित्वरं च।

यल्लोकशोकजननब्रतबद्ध-हार्दं,

तल्लीलयैव दलितं गिरिजे भवत्या।।४।।

यो धूम्रलोचन इति प्रथितः पृथिव्यां,

भस्मी बभूव स रणे तव हुंकृतेन।

सर्वासुरक्षयकरे गिरिराजकन्ये मन्ये,

स्वमन्यु दहने कृत एष होमः।।५।।

केषामपि त्रिदशनायक पूर्वकाणां,

हन्तुं न जातु सुलभाविति चण्डमुण्डौ।
तौ दुर्मदौ सपदि चाम्बर तुल्यमूर्ते,
मतिस्तवासिकुलिशात् पतितौ विशीर्णौ।।६।।
दौत्येन ते शिव इति प्रथितप्रभावो,
देवोऽपि दानवपतेः सदनं जगाम।
भूयोऽपि तस्य चरितं प्रथयांचकार,
सा त्वं प्रसीद शिवदूति विजृम्भितेन।।७।।
चित्रं तदेतदमरैरपि ये न जेयाः
शस्त्राभिघात-पतिताद्रुधिरादपर्णे।
भूमौ बभूवुरमिताः प्रतिरक्तबीजा
स्तेऽपित्वयैव गगने गलिताः समस्ताः।।८।।
आश्चर्यमेतदतुलं यद्भूत् सुरारी,
त्रैलोक्यवैभवविलुण्ठनहृष्टपाणी।
शस्त्रैर्निहत्य भुवि शुम्भ-निशुम्भसंज्ञौ,
नीतौ त्वया जननि तावपि नाकलोकम्।।९।।
त्वत्तेजसि प्रलयकाल हुताशनेऽस्मिं-
स्तस्मिन् प्रयान्ति विलयं भुवनानि सद्यः
तस्मिन्निपत्य शलभा इव दानवेन्द्रा,
भस्मी भवन्ति हि भवानि किमत्र चित्रम्।।१०।।
तत्किं गृणामि भवतीं भव तीव्रताप,
निर्वापण-प्रणयनीं प्रणमज्जनेषु।
तत्किं गृणामि भवंती भव तीव्र ताप,
संवर्द्धन-प्रणयनीं विपदि स्थितेषु।।११।।
वामे करे तदितरे च तथोपरिष्ठान्,
पात्रं सुधारसयुतं वरमातुलुङ्गम्।
खेटं गदां च दधतीं भवतीं भवानि,
ध्यायन्ति येऽरुणनिभां कृतिनस्त एव।।१२।।

यद्वारुणात् परमिदं यदि मानवास्ते,

बीजं स्मरेदनुदिनं दहनाधिरूढम्।

मायाङ्कितं तिलकितं तरुणेन्दु बिन्दु–

नदैरमन्दमिह राज्यमसौ भुनक्ति।।१३।।

आवाहनं यजनवर्णनमग्निहोत्रं,

कर्मार्पणं तव विसर्जनमत्र देवि।

मोहान्मया कृतमिदं सकलापराधं,

मातः क्षमस्व वरदे बहिरन्तरस्थे।।१४।।

अन्तः स्थिताप्यखिल जन्तुषु जन्तुरूपा,

विद्योतसे बहिरिवाखिल विश्वरूपा।

का भूरिशब्दरचना वचनाधिका सा,

दीनं जनं जननि मामव निष्प्रपञ्चम्।१५।।

एतत्पठेदनुदिनं दनुजान्तकारि,

चण्डीचरितमतुलं भुवि यस्त्रिकालम्।

श्रीमान् सुखी स विजयी सुभगः कृती स्यात्,

त्यागी चिरन्तनवपुः कवि चक्रवर्ती।।१६।।

आरती के अनन्तर निम्न स्तोत्र से भगवती को पुष्पाञ्जलि समर्पण करें—

।।स्तोत्र।।

रम्यमन्दिरान्तरे मृगेन्द्रपीठ संस्थितां
रक्तवस्त्रसंयुतां सुरक्तदन्तिका शिवाम।
नीलरत्न-सन्निभां प्रफुल्ल-कंज-लोचनां
श्रीस्थले निवासिनीं महेश्वरीं नमाम्यहम्।।

दीप्त-भास्करानना भुजाकलाप-मण्डितां
चण्डमुण्डघातिनीं प्रचण्ड-विक्रमान्विताम्।
शूलखङ्गपाश-चाप-सायकैर्विभूषितां
श्रीस्थले निवासिनीं महेश्वरीं नमाम्यहम्।।

सैरिभान्तकारिणीं सुरेन्द्र-दुःखहारिणीं
धूम्रनेत्रनाशिनीं निशुम्भशुम्भघातिनीम्।
रक्तबीजदारिकां समस्त-विश्वरक्षिकां
श्रीस्थले निवासिनीं महेश्वरीं नमाम्यहम्।

कालिकां कपालिनीं कृपामयीं विभावतीं
दैत्यसंघभक्षिकां दिवौकसां हिते रताम्।
दुर्जनप्रमाथिनीं नृमुण्डमालया युतां
श्रीस्थले निवासिनीं महेश्वरीं नमाम्यहम्।

नीलकण्ठ वल्लभां प्रपन्न भीतिनाशिकां
पार्वतीं सरस्वतीं सुमंगलां च शङ्करीम्।
देवनायकादिभिर्निरन्तरं प्रपूजितां
श्रीस्थले निवासिनीं महेश्वरीं नमाम्यहम्।

अम्बिकां विभूतिदां विचित्रशक्तिसम्भृतां
विश्वसिन्धुतारिणीं कृतान्तभीतिहारिणीम्।
सत्प्रबोधदायिकां धियस्तमो निवारिकां
श्रीस्थले निवासिनीं महेश्वरीं नमाम्यहम्।
भक्त कल्पवल्लरीं समग्रसाध्यसाधिकां
चण्डिकांदयापरां दरिद्रदुः खहारिणीम्।
रत्नमालयावृतां प्रदीप्ततेजउज्ज्वलां
श्रीस्थले निवासिनीं महेश्वरीं नमाम्यहम्।
सौम्यभावभासिकां सुराङ्गनां सुरार्चिता
मक्षरां निरामयां यशस्करां त्रिलोचनाम्।
चन्द्रबिम्ब सन्निभां त्रिलोकसुन्दरीमुमां
श्रीस्थले निवासिनीं महेश्वरीं नमाम्यहम्।
चण्डिकाष्टकं त्विदं दिवागमे सुरालये
यो नरः समाहितः पठेत्सदा मुदान्वितः।
स्यान्स विक्रमीगुणी सुपुत्रवान् निरामयः
सत्कलत्रसंयुतः सुखी धनी च कोविदः।।

पुष्पाञ्जलि के अनन्तर भगवती को साष्टाङ्ग दण्डवत करके, भगवती की अर्चना सम्पूर्ण करें।

इति।

परिशिष्ट–

दैवीकृपा और हम

भगवती जगज्जननी अनंत, सनातन सत्ता का मातृ-रूप है। वह स्वयं परब्रह्म है और निर्गुण होते हुए भी सभी गुणों के अन्तर्गत अपनी लीलाएं अभिव्यंज्जित करती है। वास्तव में हमारे, ज्ञान, कर्म, उपासना आदि से सम्बंधित व्याहृत्यां ही दैवी-लीलाओं की विभिन्न अभिव्यंजनाओं के दर्शन करवाती हैं। हमारे कर्म जिस स्तर के होते हैं, उसी स्तर पर हमारे साथ ईश्वरीय लीलाओं का व्यवहार होता है, जिनमें से कुछ सुखद और कुछ कटु अनुभव वाली घटनाएं रहती हैं। ऐसी ही एक घटना फरवरी १९९२ में भगवती अष्टादशभुजा की लीला-अभिव्यंजना के रूप में हमारे समक्ष घटित हुई, जिसके मूल में हमारा ज्ञान,हमारे कर्म या भक्ति ही कार्यरत थे।

एक विपत्तिजनक घटना

८/९ फरवरी १९९२ की रात्रि को एक अनहोनी घटना घटी— तस्करों ने श्रीस्थल माता के भवन से भगवती अठारहा भुजा की प्रतिमा का अपहरण कर लिया। यह सबके लिए एक अत्यन्त दुखद और हृदय-विदारक घटना थी। तस्कर भगवती की इस अति-मूल्यवान और दुर्लभ प्रतिमा को विक्रय करने के कपटपूर्ण उद्देश्य से उठाकर ले गये। इस घटना के मूल में दूरगामी प्रभावों वाले किसी घातक षडयन्त्र की रचना की गई प्रतीत होती थी।

प्रतिमा के अपहरण का समाचार जैसे ही फैला, एक हडकम्प मच गया। लोग आवाक् रह गये। मानो शरीर से प्राण हर लिए गये हों। सभी विस्मित, विक्षिप्त मन से एक दूसरे से कह रहे थे— "यह अनहोनी कैसे

हुई, क्यों हुई, किसकी गलती से ऐसा हुआ, अब क्या किया जाए"— इत्यादि। सम्पूर्ण हिन्दू समाज पर विपत्तियों का पहाड़ ही टूट पड़ा। आबाल-वृद्ध, नर-नारी सभी के होंठों पर रह-रह कर भगवती का पवित्र नाम आ रहा था।

प्रचंड जनाक्रोश

इस घटना से लोग दुखी तो थे ही, विक्षुब्ध और क्रुद्ध भी थे। लोग समझ रहे थे कि हिन्दू समाज को दुर्बल, उत्साह-हीन, धर्मच्युत और निश्चैतन्य बनाने के लिए इस प्रकार का दुष्कृत्य किया गया है। यह सर्वविदित है कि धर्म, समाज, संस्कृति और जीवन-दायनी परम्पराओं को नष्ट करने के ऐसे कुत्सित प्रयास विधर्मी, आततायी, आसुरी शक्तियां पूर्वकाल में भी कर चुकी हैं। सारे उत्तर भारत, जम्मू-क्षेत्र और विशेषकर डोडा-जनपद में जनाक्रोष की तीव्र-लहर दौड़ गई। लोगों ने माता की पवित्र-प्रतिमा की पुनर्प्राप्ति के लिए आन्दोलन छेड़ने का निश्चय किया। किश्तवाड़ के धर्मनिष्ठ, प्रबुद्ध और बहादुर लोगों ने 'श्रीस्थल देवी एक्शन कमेटी' का गठन किया। किश्तवाड़ नगर निवासी श्री बालकृष्ण शर्मा (अवकाश प्राप्त उपायुक्त) इस समिति के प्रधान और श्री चूनी लाल परिहार मन्त्री चुने गए। सारी जनता में संघर्ष करने का विलक्षण शक्ति का संचार हो रहा था। भगवती के प्रति अपार श्रद्धा, भक्ति-भाव और प्रेम सभी के मन में महा-ज्वार के समान उमड़ पड़ा। श्रीस्थल पुनीत-तीर्थ की गरिमा की पुनर्प्राप्ति और अपने समाज की अस्मिता की रक्षा हेतु नवयुवक श्रद्धा-भाव और उत्साह के साथ मैदान में कूद पड़े। किश्तवाड़ में तहसील मुख्यालय के सामने एक भारी जनसभा हुई। १० फरवरी १९९२ से धरनों की अटूट शृंखला आरम्भ हो गई— प्रत्येक दिन एक-एक गाँव या मुहल्ले से लोग आकर तहसील मुख्यालय के सामने धरने पर बैठते। जुलूस, जन-सभाएं

आदि भी होने लगी। एकशन कमेटी की ओर से डोड़ा, भद्रवाह, जम्मू, दिल्ली तथा आस-पास के सभी इलाकों में सूचनाएं भेजी गईं। कार्यक्रम-सम्बंधी पत्र लिखे और संघर्ष के लिये आह्वान किया। सरकार को स्मृत्ति-पत्र भेजे गए। प्रशासन को चेतावनी दी गई कि अगर प्रतिमा की खोज-बीन में ढिलाई बरती गई या चोरों को बचाने का प्रयास किया गया तो इसके गम्भीर परिणाम होंगे। ऐसी अनहोनी घटना का घटित होना और इस पर भारी जनाक्रोश— प्रशासन स्वयं भी इस स्थिति के कारण चिन्तित था। उन दिनों जम्मू-कश्मीर में उग्रवाद तेजी से फैल रहा था— जिला डोडा अब तक उग्रवाद की चपेट में आ चुका था। जम्मू-कश्मीर में राज्यपालीय शासन था और ग्रीषचन्द्र सक्सेना राज्य के राज्यपाल थे। ऐसे कठिन समय में यहां के हिन्दू समाज ने धैर्य और दृढ़ता का परिचय दिया। सौभाग्य से विपत्ति की इस घड़ी में नेतृत्व किश्तवाड़ के दूरदर्शी और विवेकशील लोगों के हाथ में था। परिस्थिति इतनी नाजुक और विस्फोटक थी कि कुछ भी अनिष्ट घट सकता था।

भगवती अठारहा भुजा की प्राचीन, ऐतिहासिक और दुर्लभ-कलाकृति-सम्पन्न दिव्य मूर्ति के अपहरण की सूचना केन्द्रीय सरकार तक भी पहुँच गई। आकाशवाणी और दूरदर्शन पर इस घटना का समाचार आया। सरकार ने इस घटना पर चिन्ता प्रकट की। राज्यपाल श्री ग्रीषचन्द्र सक्सेना ने भी खेद व्यक्त किया और कहा कि प्रतिमा की पुनर्प्राप्ति के लिए सरकार पूरा प्रयास करेगी। फलतः प्रशासन और पुलिस ने त्वरित-गति से प्रतिमा की खोज आरम्भ कर दी। इसके लिए विशेष-अफसरों की निगरानी में पुलिस का एक विशेष-दस्ता तैनात किया गया। पुलिस-विभाग तथा सुरक्षा-कर्मियों को चौकस कर दिया गया। यातायात के मार्गों, बस अड्डों तथा

हवाई-अड्डों आदि पर भी चौकसी के सन्देश भेजे गए। आशंका थी कि कहीं तस्कर प्रतिमा को देश से बाहर न ले जाएं।

भक्ति और प्रेम का ज्वार

लोगों ने स्वयं भी खोज-खबर करने के प्रयास आरम्भ कर दिए। नवयुवक जंगलों, वनों, कन्दराओं, उपत्यकाओं और पर्वतों पर माता की प्रिय-प्रतिमा को ढूढ़ने के लिए दौड़-धूप करने लगे। भक्तजनों ने व्रत, उपवास, पूजा-पाठ आदि आरम्भ कर दिये। मन्दिरों, देवस्थानों और पूजा स्थलों पर जाकर लोगों ने आर्तस्वर में भगवती जगज्जननी को पुकारना शुरू कर दिया। माताएं-बहनें, छोटे-बड़े सब रुदन करते हुए माता से अपने विग्रहरूप में पुन: प्रकट होने के लिए प्रार्थनाएं करने लगे। किश्तवाड़ नगर के शिव-मन्दिर में भगवती को प्रसन्न करने हेतु एक विशाल चण्डी-यज्ञ का आयोजन भी किया गया।

श्रीस्थल में माता के भवन पर लोगों की भीड़ लगनी आरम्भ हो गई। भगवती की पीठ खाली पाकर लोग चीत्कार कर उठते, ज़ोर-ज़ोर से रोते और पागलों की भांति प्रतिमा को जहां-तहां ढूढ़ने निकलते। श्री ठाकुर कुलबीर सिंह तथा अन्य परम-देवी-भक्तों ने माता की कृपा प्राप्ति के लिए भजन-कीर्तन, जप आदि आरम्भ कर दिया। भवन पर सारे मामले की तफतीश के लिए पुलिस अधिकारी तथा सुरक्षा बल तैनात किए गए।

प्रशासन और पुलिस की सक्रियता

जैसे-२ दिन बीतते गये, लोगों का धैर्य डगमगाने लगा और व्यग्रता बढ़ने लगी। उसी समय राज्यपाल महोदय के आदेश पर राज्यपाल के सलाहकार श्री हमीदुल्लाह खान किश्तवाड़ दौरे पर आये। जनता की ओर से 'श्रीस्थल देवी एक्शन कमेटी' के सदस्यों का एक शिष्ट-मण्डल राज्यपाल

के सुरक्षा-सलाहकार से मिला। शिष्ट-मण्डल ने श्री हमीदुल्लाह खान को एक ज्ञापन दिया और आग्रहपूर्वक मांग की कि भगवती अठारहा भुजा की प्रतिमा को हर कीमत पर ढूंढ़ निकाला जाए। सलाहकार महोदय ने पवित्र-प्रतिमा की पुनर्प्राप्ति का पूरा आश्वासन दिलाया और सरकार की ओर से घोषणा करवाई गई कि प्रतिमा की खोज-खबर, सुराग आदि देने वाले को सरकार एक लाख रुपये का पारितोषक देगी।

समूचे हिन्दू समाज की संगठन शक्ति, नवयुवकों के अदम्य साहस,धैर्य और प्रचण्ड संकल्प शक्ति को देख सामयिक सरकार चिन्तित हो उठी। अतः सरकार ने भगवती अष्टादश-भुजा की प्रतिमा को खोज निकालने के गहन और तीव्र प्रयास आरम्भ कर दिये।

लोम-हर्षक सुखांत

आखिर यह प्रयास रंग लाया। भक्तों के रुदन और आर्तनाद को मां-भगवती अधिक देर सहन न कर सकी। ७ मार्च १९९२ को एक चमत्कार-सा हो गया। श्रीस्थल में माता के भवन के ठीक एक किलोमीटर नीचे मार्ग में भगवती अठारहा भुजा की प्रतिमा भूमि में गढ़ी हुई पाई गई। इस स्थान की निशानदेही एक तस्कर ने ही की थी। माता के पुजारी और पुलिस कर्मी वहां तुरंत पहुँच गए। सावधानी पूर्वक बोरे में लिपटी हुई भगवती की प्रतिमा को गड्ढे में से खोद कर बाहर निकाला गया। यह एक चमत्कार ही था कि अठाराह-भुजाओं वाली भव्य-प्रतिमा पूर्णतया सुरक्षित थी और कहीं कोई साधारण खरोंच तक नहीं लगी थी। प्रतिमा को वस्त्रों से अलंकृत कर, पालकी में बैठा कर मन्दिर परिसर में पहुंचाया गया। चारों ओर प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। मानों शरीर में प्राण वापिस आं गए हों। प्रतिमा का हरण करने वाले तस्कर भी पकड़े गए। भक्तजनों ने माता का धन्यवाद किया। अब निराशा और रुदन के स्थान पर हर किसी के नेत्रों में आशा और प्रसन्नता के आँसू थे। लोग पुलिस तथा प्रशासन की भी भूरी-भूरी प्रशंसा

कर रहे थे और बधाईयां दे रहे थे। सम्पूर्ण क्षेत्र में लोगों ने राहत की सांस ली और अपार आत्मानंद की अनुभूति प्राप्त की।

विजय प्रयाण

८ मार्च १९९२ को जनता ने 'श्रीस्थल देवी एक्शन कमेटी' के नेतृत्व में श्री गौरीशंकर मन्दिर सरकूट से तहसील मुख्यालय तक महाविजय यात्रा का आयोजन किया। इस जुलूस में जन-ज्वार ही उमड़ पड़ा— पुरुष, स्त्री, बाल, वृद्ध सभी खुशी से झूम रहे थे। भगवती की असीम कृपा के लिए हार्दिक धन्यवाद समर्पित कर रहे थे। युवकों के जयनाद से आकाश गूंज रहा था।

तहसील मुख्यालय पर भारी जनसभा हुई। इस अवसर पर ज़िला डोडा के ज़िलाधीश, प्रशासन तथा पुलिस अधिकारी उपस्थित थे। 'एक्शन कमेटी' ने उन सभी पुलिस अधिकारियों और पुलिस कर्मियों को सम्मानित किया जिन्होंने तत्परता और प्रामाणिकता से परिश्रमपूर्वक दिन-रात कार्य कर भगवती की प्रतिमा को खोज निकाला और पापिष्ठ तस्करों को भी गिरफ्तार किया। पश्चात् अप्रैल १९९२ में डोडा जनपद के सम्पूर्ण हिन्दू समाज ने 'श्रीस्थल देवी जी प्रबंधक समिति' के सहयोग से भगवती अष्टादश भुजा की तेजस्वी प्रतिमा को अपनी पावन पीठ पर पुनर्स्थापित किया। इस अवसर पर मन्दिर परिसर में एक महायज्ञ का आयोजन भी हुआ।

पूर्वकाल का इतिहास

माता अठारहा भुजा (श्रीस्थल) के विलुप्त होने और पुनः प्रकट होने की यह तीसरी घटना है। प्राचीन काल में महर्षि कश्यप के परम शिष्य ऋषि श्रीपाल ने कालीगढ़ (गालीगड) में माता अठारहा भुजा की इस प्राणप्रतिष्ठित,

विलक्षण प्रतिमाकी प्रस्थापना की थी। कालान्तर में 'कालीगढ़' की जनता प्रमादी, आलसी और व्यसनी हो गई। आपसी कलह और दुर्भाव के वशीभूत उन दुर्मति लोगों ने ऋषि श्रीपाल के प्रिय शिष्य और माता के परम-भक्त आपत गोस्वामी की हत्या कर दी। इस दुष्कर्म के परिणामस्वरूप 'कालीगढ़' दैवी-प्रकोप का भाजन बन नष्ट हो गया और भगवती अठारहा भुजा की प्रतिमा उसी वन-प्रान्तर में विलुप्त हो गई। आज से लगभग ९०० वर्ष पूर्व जब किश्तवाड़ में महाराजा अग्रदेव का राज्य था, तब यह प्रतिमा एक ग्वाले के माध्यम से प्रगट हुई। महाराजा अग्रदेव ने अग्रालय (अग्राल गाँव) में एक भव्यमन्दिर का निर्माण करवाया और वहां भगवती अठारहा-भुजा की यह दुर्लभ प्रतिमा समारोह-पूर्वक स्थापित की। इस मन्दिर के प्रांगण और इससे संलग्न परिसर में कई और मन्दिरों का निर्माण हुआ जिनमें देवी-देवताओं की अनेकों कला-सम्पन्न प्रतिमाएं सुशोभित थीं। इस प्रकार से उस काल में अग्रालय इस क्षेत्र में धर्म, संस्कृति और लोक-जीवन की परम्पराओं के विकास का केन्द्र बन गया जिसमें मुख्य भूमिका भगवती महामाया अष्टादश भुजा के पावन तीर्थस्थल की ही थी।

किश्तवाड़ प्रदेश पूर्वकाल से ही स्वतंत्र और स्वाभिमानी राष्ट्र-राज्य रहा है। मुगल और पठान आक्रमणकारियों की आँखों में इस प्रदेश की स्वतंत्रता कांटों के समान खटकती थी। अत: १६२० ई० में बादशाह जहांगीर के आदेश से एक विशाल, टिडीदल मुगल सेना ने तीन ओर से किश्तवाड़ पर आक्रमण किया। इस भयंकर आक्रमण से किश्तवाड़ का राजनैतिक और सांस्कृतिक पतन हो गया। आततायी और बरबर मुगल सैनिकों ने प्राचीन, ऐतिहासिक मन्दिरों, भवनों तथा धर्मस्थलों को ध्वस्त कर दिया और विभिन्न प्रकार की कलाकृतियों से युक्त देव-प्रतिमाओं को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया।

परन्तु इस महा-विध्वंस से पूर्व ही भगवती के परम-भक्त थपरु ने माता अष्टादश भुजा की प्रतिमा को मन्दिर से निकाल कर अग्रालय से दूर किसी दुर्गम, अलभ्य पर्वतीय गह्वर में छिपा दिया। इस प्रकार से यह महान प्रतिमा दूसरी बार अनेकों वर्षों तक अदृश्य रहने के पश्चात् १६५० से १६५६ ईस्वी के काल खण्ड के बीच, किशतवाड़ के राजा महासिंह के समय पुनः प्रकट हुई। इस समय यह पावन प्रतिमा श्रीस्थल क्षेत्र में रहने वाले क्षत्रिय कुल में उत्पन्न किसी सोभा सिंह नामक व्यक्ति को शिकार खेलते समय मिली। यह किंवदन्ती भी प्रसिद्ध है कि प्रतिमा भगवती की कृपा से किसी स्थानीय गोपाल के माध्यम से ही प्रकट हुई थी। दुर्गम गुफा से मूर्ति के प्रकट होने के पश्चात्, राजा महासिंह और उसके सहचरों ने सूचना अनुसार स्वयं जाकर इस भव्य मूर्त्ति को वहां से उठाया और उस स्थान पर पहुँचाया जहां आज भगवती अष्टादशभुजा मन्दिर में पीठासीन है। ८ फरवरी १९९२ को भगवती की इस प्रतिमा का अपहरण और ७ मार्च १९९२ को पुनः प्रकट होना इस प्रकार की तृतीय घटना है।

चेतावनी को समझें

काल की गति अत्यन्त बलवान होती है। इसके सामने संसार की प्रत्येक चीज़ निकृष्ट है। परन्तु यह भी अटल सत्य है कि मनुष्य का आत्मबल, चारित्र्य-शक्ति और धर्म-निष्ठा काल के गहरे अंधड़ में भी उसे शक्ति और जीवन प्रदान करते हैं और उसकी जिजिविशा को विजय और गौरव से महिमा-मण्डित करते आए हैं। जब हमारा आत्मबल और चारित्र्य-बल क्षीण हो जाता है, धर्म-परायणता समाप्त हो जाती है तो ईश्वरीय-शक्तियां और अनुकम्पाएं भी हमसे दूर चली जाती हैं। हम निस्तेज और गौरवहीन हो जाते हैं, अपमान और पराजय का मुँह देखना पड़ता है। भगवती अठारहा भुजा की तेजस्वी प्रतिमा यदि विलुप्त हो जाती है, कारण

चाहे कुछ भी हो, तो समझ लेना चाहिए कि ईश्वरीय-शक्ति हमें छोड़ कर जा रही है और हम उसकी सद्-कृपा से वञ्चित हो रहे हैं। जगत-माता, सर्वेश्वरी, ब्रह्मरूपा भगवती अठारहा-भुजा की ८ फरवरी १९९२ को विलुप्त होने की घटना इसी तथ्य की द्योतक है और हमारे लिए एक गम्भीर चेतावनी भी है जिसे हमें समय रहते समझ जाना चाहिए। जब तक हम सन्मार्ग के अनुगामी रहेंगे, ईश्वरीय-सत्ता द्वारा हमारा सहयोग और मार्गदर्शन हमें मिलता रहेगा। हमें निष्प्राण, निस्तेज और अस्मिता-हीन करने वाली घटनाएं कभी नहीं होंगी। जब अठारहा भुजा देवी की प्रतिमा को तस्कर उठा कर ले गए थे, तब हमने यह नहीं सोचा कि यह प्रतिमा पाषाण की है, इसमें क्या रखा है। हमें लगा कि माँ भगवती हमें सत्य में ही छोड़ कर चली गई। हमारे लिए जीवन-मरण का प्रश्न खड़ा हो गया। हमने अपनी अस्मिता पर गहरा आघात महसूस किया। परन्तु कैसी विडम्बना है! भगवती की पाषाण-प्रतिमा जिन आदर्शों-सिद्धान्तों, प्रतीकों और मान्यताओं का परिलक्षण करती हैं, हम उन्हें जल्दी भूल जाते है और उनकी उपेक्षा ही करते हैं। हमारे ऐसे आचरण से भगवती के प्रति प्रेम और श्रद्धा सब खोखले लगते हैं और हम जूनून से भरे अन्धविश्वासी सिद्ध होने लगते हैं। अतः यह अति आवश्यक है कि हम धर्मान्धता और अनधानुकरण का सर्वथा त्याग कर भगवती के प्रति सच्चा प्रेम और वास्तविक श्रद्धा अपने अन्दर पैदा करें। हम अपना आचरण शुद्ध रखें, वीर और धर्मपरायण बनें, अपने हित के साथ-साथ समाज-हित के लिए भी सचेष्ट रहें, तभी दैवी-कृपा हम पर बनी रहेगी।